(ii) मनुष्य के आवासीय स्थान का अवशेष, जैसे, मल-मूत्र, शहरी कूड़े-कचड़े, गन्दे नाली का पानी गाद आदि ।

(iii) मुर्गी, भेड़, बकरी तथा अन्य जानवरों का मल-मूत्र ।

(iv) कसाई खाना (Slaughter house) का अवशेष, जैसे–हड्डी खूर, गोस्त, खून आदि ।

(v) मछली का अवशेष ।

(vi) कृषि उद्योगों का अवशेष, जैसे–खल्ली, चीनी मिलों का अवशेष, फल एवं सब्जियों का अवशेष आदि आदि ।

(vii) फसलों का अवशेष, जैसे–ईख, मक्का का डण्ठल, पुआल, दलहनी फसलों का छिलका आदि-आदि ।

(viii) जलकुम्भी एवं तालाबों का गाद ।

(ix) हरी खाद की फसलें ।

पारिस्थितिक तन्त्र (eco-system) की ओर नजर दौड़ाने से यह माना जाता है कि जैवीय पदार्थ Living organisms) के जीवन यापन हेतु पोषक तत्त्वों के व्यवहार के बाद अवशेष जो विभिन्न रूपों में पाये जाते हैं, वे कार्बनिक खाद के स्रोत हैं ।

मूल तत्त्वों का औसत प्रतिशत पशुओं एवं मनुष्यों के मल-मूत्र में निम्नलिखित हैं–

तत्त्व	जानवर		मनुष्य	
	मल	मूत्र	मल	मूत्र
जल	82.4	92.6	75.0	97.0
कार्बनिक पदार्थ	15.2	4.8	22.1	2.0
खनिज पदार्थ	3.6	2.1	2.9	1.0
नेत्रजन	0.3	1.2	1.5	0.6
स्फुर	0.18	0.01	1.1	0.1
पोटाश	0.18	1.25	0.5	0.2
कैलशियम	0.36	0.01	1.0	0.3

उपरोक्त तत्त्वों के अलावे सूक्ष्म तत्त्वों की उपलब्धि होती है । सूक्ष्म जीवाणु क्लिष्ट कार्बनिक पदार्थों को अपघिटित कर पौधों के लिए उपलब्ध रूप परिणत करते हैं । ये कार्बनिक पदार्थ सूक्ष्म जीवाणुओं के जीवन यापन एवं संख्या वृद्धि के लिए आवश्यक हैं । अपघटित पदार्थ कार्बनिक खाद कहलाता है ।

कार्बनिक खादों को नेत्रजन की उपलब्ध मात्रा एवं कार्बनिक पदार्थ की मात्रा के आधार पर भारी (Bulky) एवं सांद्रिक (concentrated) वर्गों में बाँटा जाता है । हरी खाद भी भारी खाद की श्रेणी में आती है, परन्तु इसे अलग से अध्ययन किया जाता है क्योंकि खेत में उगाकर उसी खेत में प्लावित कर दिया जाता है ।

भारी कार्बनिक खादों में मुख्यत: गोबर की खाद एवं कम्पोस्ट आते हैं जिनमें पशुओं एवं मनुष्यों के मल-मूत्र ही विशेष होते हैं, साथ ही इनमें शाक-सब्जी पदार्थ के अवशेषों से अधिक नेत्रजन पाया जाता है । इन तत्त्वों से सूक्ष्म जीवाणुओं की संख्या में वृद्धि होती है जिनके द्वारा नेत्रजनीय एवं कार्बनीय तत्त्वों का अपघटन होता है ।

गोबर की खाद में पशुओं का मल-मूत्र एंव बिछावन होते हैं । पोषक तत्त्वों की प्रतिशतता, पशुओं का आहार, बिछावन, जाति, उम्र तथा बनाने के तरीके पर निर्भर करता है । तैयार करने के लिए ऊँची जमीन में ट्रेंच या पिट (Trench or Pit) बनानें की आवश्यकता होती है, जो पशु-उत्सर्ग की मात्रा पर निर्भर करता है । ध्यान देने की बात यह

है कि गहराई ऐसी हो जिसकी देख-रेख आसानी से किया जा सके । जब पिट या ट्रेंच भरकर सतह से 30 से 40 से० मी० ऊपर हो जाता है तो उसे मिट्टी एवं गोबर से लेप दिया जाता है जिससे बाह्य जल का प्रवेश न हो । अनुकूल वातावरणीय स्थिति में अवशेष में पाये जाने वाले सूक्ष्म जीवाणओं-थुजीवी एवं अवायुजीवी-दोनों के द्वारा साथ-साथ अपघटन क्रियाएँ होती हैं और खाद दो से तीन महीनों में तैयार हो जाती है । तत्वों के कम-से-कम विशेषकर नेत्रजन के ह्रास को कम करने के लिए पशुओं के लिए विछाए गए बिछावन में सिंगल सुपर फास्फेट उर्वरक मिलाने की अनुशंसा की जाती है । इसी तरीके से शहरी अवशेषों से तथा देहाती अवशेषों से कम्पोस्ट बनाये जाते हैं । सूक्ष्म जीवाणुओं की क्रिया की सक्रियता बढ़ाने के लिए नेत्रजनीय उर्वरक मिलाने की अनुशंसा की जाती है जिससे अपघटन की क्रिया तेज हो, क्योंकि इसमें क्लिष्ट कार्बनिक पदार्थ की मात्रा कई गुनी अधिक होती है । वैसे औसतन गोबर की खाद में नेत्रजन 0.5%, स्फुर 0.3% एवं पोटास । 1.0% आँका गया है, वहीं देहाती अवशेषों से बने कम्पोस्ट में नेत्रजन 0.5%, स्फुर 0.5% एवं पोटाश 1.0% तथा बाहरी अवशेषों से बने कम्पोस्ट में नेत्रजन 1.0%, स्फुर 0.5% एवं पोटाश 1.5% आँका गया है ।

बायो-गैस प्लांट की महत्ता आज की परिस्थिति में बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इससे ऊर्जा (Energy) को उत्पत्ति होती है, साथ ही अवशेष कार्बनिक पदार्थ जो गाद (Slurry) कहलाता है, खाद के रूप में उपयोग किया जाता है, उतना ही नहीं, इसमें औसतन नेत्रजन 3.6-1.8%, स्फुर 1.1-2.0% तथा पोटाश 0.8-1.2% तक पाया जाता है । जिस तरह गोबर की खाद एवं कम्पोस्ट के द्वारा मृदा की भौतिक स्थिति सुधरती है, वही गुण बायो-गैस के गाद की भी है।

अन्य जानवरों का मल-मूत्र भी नेत्रजन का महत्त्वपूर्ण स्रोत है, उदाहरण के लिए नेत्रजन (N) स्फुर (P), पोटाश (K) की औसतन प्रतिशत निम्नलिखित हैं ।

सुअर = 3.0 : 2.5 : 2.0

भेड़ एवं बकरी = 1.5 : 1.0 : 2.0

घोड़ा = 2.5 : 1.5 : 1.4

मुर्गी = 3.0 : 2.5 : 1.5 आदि ।

मनुष्यों का मल-मूत्र भी खाद का उपयुक्त स्रोत है । आहार का गन्दे नली से बहता पानी एवं गाद भी अच्छा स्रोत है । इसे अच्छी तरह से तैयार कर व्यवहार करना लाभकारी होता है वैसे इससे उपजाए सब्जियों को कच्चा खाने में बीमारी से ग्रसित होने की सम्भावना होती है, अत: यह अनुशंसा की जाती है कि सब्जियों को पकाकर ही खाया जाय ।

हरी खाद भी नेत्रजन का अनुकूल स्रोत है और उपयोग में आनेवाली फसलों से ढैंचा (Sesbania spp) एवं सनई (cotalaria irincea) मुख्य हैं, वैसे सभी दलहनी फसलें एवं चारा फसल में बरसीम का भी प्रयोग किया जाता है । इनकी जड़ों में ग्रन्थियाँ होती है : जिसमें बैक्टिरीया (Rhizobium spp) के द्वारा वातावरणीय नेत्रजन का स्थिरीकरण (fixation) होता है । औसतन हर खाद में तत्त्वों का प्रतिशत 0.7 : 0.2 : 2.5 रहता है । जलकुम्भी में 2.0 : 1.0 : 2.0 आँका गया है ।

भारी कार्बनिक खाद का व्यवहार लाभकारी होता है क्योंकि इससे मृदा की भौतिक स्थिति अनुकूल बनती है, साथ ही पोषक तत्त्व विशेषकर नेत्रजन धीरे-धीरे उपलब्ध होते हैं जिस गुण के कारण उर्वरक के साथ इसका व्यवहार बड़ा ही उपयोगी होता है, साथ ही इस तरह खाद तैयार करने से वातावरण दूषित होने से बचता है । केवल इसे स्थानांतरित करने में कठिनाई होती है क्योंकि मात्रा की आवश्यकता अधिक होती है ।

सांद्रित कार्बनिक खाद का उपयोग भी लाभकारी होता है, उदाहरण के लिए नीम की खल्ली में कीटनाशी गुण

होने के कारण फसल को कीट के प्रकोट से बचाता है । सांद्रित खादों में औसतन N : P : K का प्रतिशत निम्नलिखित आँका गया है ।

मूँगफली की खल्ली	–	7.0 : 1.5 : 1.5
सरसों की खल्ली	–	4.5 : 1.5 : 1.0
तीसी की खल्ली	–	5.0 : 1.5 : 1.0
अंडी की खल्ली	–	5.5 : 2.0 : 1.5
नीम की खल्ली	–	5.0 : 1.5 : 1.5
करंज की खल्ली	–	4.0 : 1.0 : 1.0
हड्डी चूर्ण	–	3.0 : 20.5 : 0.0
मछली चूर्ण	–	7.0 : 6.0 : 1.0

अकार्बनिक खाद–

अकार्बनिक खाद (उर्वरकों) में पाए जाने वाले तत्त्वों के आधार पर इन्हें चार भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है–

1. **नेत्रजनी उर्वरक**–पौधों को नेत्रजन पोषक तत्त्व प्रदान करते हैं ।
2. **फास्फेटी उर्वरक**–इसमें फॉसफोरस पोषक तत्त्व होता है ।
3. **पोटाशी उर्वरक**–इसमें पोटाशियम तत्त्व होते हैं ।
4. **मिश्रित उर्वरक**–इसमें पौधों के लिए दो या दो से अधिक पोषक तत्त्व होते हैं ।

रासायनिक अभिक्रियाओं की दृष्टि से उर्वरकों को तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं–

(i) **आम्लीक**–वैसे, जो उपयोग करने पर अम्ल पैदा करते हैं, जैसे अमोनियम सल्फेट, अमोनियम क्लोराइड आदि ।

(ii) **क्षारीय**–वैसे, जो उपयोग करने पर क्षार पैदा करते हैं जैसे पोटाशियम नाइट्रेट, हड्डी चूर्ण आदि ।

(iii) **उदासीन**–वैसे, जो न अम्ल और न ही क्षार पैदा करते हैं जैसे कैलशियम अमोनियम नाइट्रेट, सिंगल सुपर फास्फेट आदि ।

पौधों को पोषक तत्त्वों में नेत्रजन, स्फुर एवं पोटाश की भारी मात्रा में आवश्यकता होती है जिसकी पूर्त्ति के लिए उर्वरक का व्यवहार आवश्यक माना जाता है ।

नाईट्रोजन प्रोटीन के रूप में प्रत्येक कोशिका के प्रोटोप्लाज्म में निश्चित रूप से उपस्थित रहता है । इसके अतिरिक्त क्लोरोफिल, न्यूक्लियोटाइड, फॉस्फेटाइड एवं अल्केलॉयडों का अभिन्न अंग होता है, जिनका वनस्पति जीवन से बहुत ही गहरा संबंध है । बहुत से एन्जाइमो, विटामिनों एवं हार्मोनों के निर्माण में नाइट्रोजन योग देता है । इसकी अनुपस्थिति या कमी होने पर पौधों की वृद्धि रूक जाती है और वे पीले दिखलाई देते हैं । पत्तियों का पीलापन पहले की पत्तियों में दिखलाई देते हैं । पत्तियों का पीलापन पहले की पत्तियों में दिखलाई देता है और बहुत समय तक ऊपरी पत्तियाँ हरी बनी रहती हैं ।

कमी की पूर्त्ति के लिए नाइट्रोजनी उर्वरकों का व्यवहार किया जाता है जो कि अमोनिकल नाइट्रेट अथवा एमाइड रूप से उपस्थित रहता है, जिसके आधार पर ही वर्गीकरण किया जाता है ।

उर्वरकों में नाइट्रोजन का रूप	उर्वरक के नाम	नाइट्रोजन की प्रतिशत मात्रा	तुल्यांकन	
			अम्लता/क्षारत्व वजन आधारित	
नाइट्रेट	सोडियम नाइट्रेट	16.0	–	99
	पोटाशियम नाइट्रेट	13.0	–	23
	कैलशियम नाइट्रेट	15.5	–	21
अमोनिकल	अमोनिकल सल्फेट	20.5	110	–
	निर्जल अमोनिया	82.2	138	–
	अमोनियम क्लोराइड	26.0	128	–
	अमोनिया घोल	20.0-25.0	–	–
नाइट्रेट एवं अमोनिकल	अमोनियम सल्फेट नाइट्रेट	26.0	99	–
	अमोनियम नाइट्रेट	33.5	60	–
	कैलशियम अमोनियम नाइट्रेट	25.0	–	–
एमाइड	कैलशियम साइनामाइड	21.0	–	63
	यूरिया	46.6	80	–

नाइट्रेट उर्वरकों में नाइट्रोजन, नाइट्रेट आयन के रूप में रहती है । यह उर्वरक पानी में शीघ्र घुलनशील है और पौधों को बहुत जल्दी उपलब्ध हो जाते हैं । चूँकि इसमें लीचिग ज्यादा होती है इसलिए ये वर्षा के मौसम में प्रयोग के लिए उपयुक्त नहीं है । इन उर्वरकों का प्रभाव क्षारीय होता है ।

अमोनियम-युक्त उर्वरकों में नाइट्रोजन, अमोनिया आयन के रूप में पाया जाता है । भूमि में प्रयोग करने पर यह मृदा के सूक्ष्म कणों से चिपका रहता है जिससे लीचिंग द्वारा हानि नहीं हो पाती । अत: इनका प्रयोग पानी भरे खेत में भी किया जा सकता है । ये उर्वरक भूमि पर अम्लीय प्रभाव डालते हैं ।

अमोनिया एवं नाइट्रेट-युक्त उर्वरकों में नाइट्रोजन, अमोनिया तथा नाइट्रेट दोनों आयनों के रूप में पाया जाता है। इन उर्वरकों का गुण अमोनिया तथा नाइट्रेट उर्वरकों के बीच का है । इन उर्वरकों का प्रभाव उदासीन होता है ।

इमाइड-युक्त उर्वरक कार्बनधारी उर्वरक हैं । इन उर्वरकों का नाइट्रोजन पौधों को शीघ्र नहीं मिल पाता । भूमि में उपस्थित जीवाणुओं की क्रिया के फलस्वरूप एमाइड नेत्रजन क्रमश: अमोनियम तथा नाइट्रेट में परिवर्तित हो जाते हैं, लीचिंग द्वारा हानि को रोकने के लिए इन्हें खेत में डालने के पूर्व चार गुनी मिट्टी के साथ मिलाकर अड़तालीस घण्टों तक रखना आवश्यक है । ऐसा करने से जीवाणु इनके नाइट्रोजन को अमोनिया के रूप में बदल देते हैं जिससे लीचिंग नहीं हो पाता है । ये उर्वरक भूमि पर अम्लीय प्रभाव डालते हैं ।

फॉस्फोरस भी पौधों की वृद्धि एवं विकास हेतु महत्त्वपूर्ण है । प्रत्येक जीवित कोशिका में यह उपस्थित रहता है। पौधों तथा जानवरों, दोनों के भोजन में आवश्यक है । उपापचय (Metabolism) में इसका मुख्य स्थान होता है । कार्बोहाईड्रेट का उपापचय सामान्यत: केवल तभी प्रारम्भ होता है जब फास्फोरिक अम्ल के साथ कार्बनिक यौगिक एस्टरकृत (esterified) होते हैं । ऊर्जा के रूपान्तरण में फॉस्फोरस एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है और वसा तथा प्रोटीन उपापचय में हाथ बँटाता है । न्युक्लियोटाइड, लेसौथिन जैसे जीवन-संबंधी यौगिकों तथा एन्जाइमों का यह एक आवश्यक घटक होता है । इसके कमी होने पर पत्तियाँ, तने व डालियाँ नील लोहित (Purple) रंग की हो जाती हैं । धड़ पतले और छोटे हो जाते

हैं तथा नों एवं फलों की उपज कम हो जाती है । इस तत्त्व की कमी का प्रभाव अन्य तत्त्वों की तरह पत्तियों पर नहीं पड़कर पौधों के पूरे विकास पर पड़ता है ।

फास्फोरस वाले उर्वरकों में फास्फेट कैलशियम के साथ संयुक्त रहता है । कैलशियम की मात्रा के अनुसार इन्हें मोनो, डाई या ट्राई कैलशियम फास्फेट की श्रणियों में बाँटा जा सकता है ।

मोनो कैलशियम फास्फेट रूप में फास्फोरस साधारण जल में घुलकर प्राप्त होता है, जैसे–सिंगल सुपर फास्फेट तथा ट्रिपिल सुपर फास्फेट ।

अम्लीय मृदाएँ तथा वे मृदाएँ जिनमें लोहा एवं एल्युमीनियम मुक्त अवस्था में पाया जाता है, इन उर्वरकों के प्रयोग से पानी में घुलनशील फास्फोरस अलुघलनशील होकर मिट्टी में स्थिर हो जाता है वहीं क्षारीय एवं चूनावाली मिट्टियों में पानी में अघुलनशील कैलशियम फास्फेट के रूप में बदल जाता है ।

ट्राई कैलशियम फासफोरस में फास्फेट 2% साइट्रिक अम्ल में घुलनशील एवं जल में अघुलनशील होता है, जैसे डाईकैलशियम फास्फेट, बेसिक स्लेग । हड्डी के चूरे में पाया जाने वाला फास्फोरस भी कुछ मात्रा में साइट्रिक अम्ल में घुलनशील होता है ।

ट्राई कैलशियम फास्फेट में फास्फोरस जल तथा साइट्रिक अम्ल दोनों में घुलनशील होता है, जैसे रॉक फास्फेट

अन्य फास्फेटिक उर्वरक में फास्फोरस जल में घुलनशील होता है, जैसे–डायअमोनियम फास्फेट, अमोनियम फास्फेट, अमोनियम फास्फेट सल्फेट,. यूरिया अमोनियम फास्फेट ।

फास्फोरसधारी उर्वरकों का गुण के आधार पर वर्गीकरण किया जाता है–

उर्वरक	प्रतिशत		जल मात्रा	उर्वरक की प्रवृत्ति
	जलविलेय	साइट्रेट विलेय		
जल विलय				
सिंगल सुपर फास्फेट– 16.0		–	16.4%	उदासीन
ट्रिपिल सुपर फास्फेट– 46.0		–	46.0%	अम्लीय
साइट्रेट विलेय				
डाइकैलशियम फास्फेट		34.40%	34.0%	अम्लीय
क्षारकीय धातुमल (Basic slag)		3%-5%	3%–5%	क्षारीय
जल एवं साइट्रेट दोनों में अविलेय				
रॉक फास्फेट .		–	20%–30%	क्षारीय

पोटाशियम मुख्यतः अकार्बनिक तथा कार्बनिक लवणों के घोलों के रूप में पाया जाता है और पौधों के लिए महत्त्वपूर्ण खनिज तत्त्व होता है । पोटाशियम का कार्य उत्प्रेरक (Catalyst) के रूप में होता है जिसके बिना पौधे की वृद्धि और विकास असम्भव है । यह कोशिकाओं की व्यवस्थाओं का मुख्य तत्त्व है क्योंकि कोशिका झिल्ली की पारगम्यता के साथ-साथ प्रोटोप्लाज्म के जलीयकरण को सुचारु से क्रियाशील रखता है । इसके अलावे एन्जाइमों के उत्प्रेरक में भी जिससे प्रोटीन एवं कार्बोहाइड्रेड के चयापचय (metabolism) के साथ-साथ कार्बोहाइड्रेट के स्थानान्तरण में मदद करता है और पौधे रोगरोधी होते हैं ।

पोटाश उर्वरक पोटाशियम का लवण है । यह मुख्यतः क्लोराइड और सल्फेट रूप में ही प्रयोग किया जाता है । प्रचलित पोटाशधारी उर्वरक निम्नलिखित हैं ।

(i) **पोटाशियम क्लोराइड**–इसे म्युरेट ऑफ पोटाश भी कहते हैं । इसमें पोटाशियम 58.0% होता है जो क्लोरिन से मिला होता है ।

(ii) **पोटाशियम सल्फेट**–यह सफेद रवेदार उर्वरक होता है । इसमें पोटाशियम 48.0% होता है ।

(iii) **पोटाशियम केनाइट**–यह मैग्नेशियम पोटाशधारी उर्वरक है । इसमें पोटाशियम 23% होता है । पोटाश तत्व की कमी होने पर निचली पत्तियों के किनारे झुलसे हुए से या जले हुए से दिखते हैं । इसकी कमी से तने बहुत कमजोर हो जाते हैं जिससे पौधे गिर जाते हैं तथा उपज कम हो जाती है । किसी लक्षण के स्पष्ट हुए बिना भी उपज में वेहद कमी आ सकती है और इसका कारण 'पोटाशियम के लिए आदृश्य भूख (HiddedN hunger) माना जाता है ।

उर्वरक मिश्रण :

दो या दो से अधिक उर्वरक मिश्रण के संयोग से जो उर्वरक तैयार होता है उसे उर्वरक मिश्रण कहा जाता है। उर्वरक मिश्रण में तीन मुख्य पोषक तत्व नाइट्रोजन, फास्फोरस तथा पोटाश में दो का होना आवश्यक है ।

उर्वरक मिश्रण का उपयोग लाभकारी होता है जिससे संतुलित तत्त्व मृदा में डालने से उर्वरक शक्ति बनी रहती है, परन्तु बिना मृदा का संश्लेषण किए उपयोग लाभदायक नहीं होता और अनावश्यक तत्व की बहुलता बढ़ जाती है । उर्वरक मिश्रण का उपयोग पूर्ण जानकारी के बाद ही लाभकर होता है । बाजार में पाए जानेवाले मिश्रण निम्नलिखित हैं :–

उर्वरक का नाम	ग्रेड (N : P : K)
हरा बहार	18 : 18 : 6
सुफला	20 : 20 : 20
सुफला	15 : 15 : 15
श्यामला	15 : 15 : 15
ग्रोमोर	28 : 28 : 0
लक्ष्मी	12 : 12 : 12
इफको–1	10 : 26 : 26
इफको–2	12 : 32 : 16
इफको–3	14 : 36 : 12

कार्बनिक तथा अकार्बनिक खादों के प्रभाव तथा प्रयोग करने के तरीके में निम्नलिखित अन्तर पाए जाते हैं ।

कार्बनिक खाद	अकार्बनिक (उर्वरक) खाद
1. भूमि पर भौतिक प्रभाव	
(i) कार्बनिक खाद मृदा कणों को बाँधकर कण समूह बनाती है और इस प्रकार से मिट्टी दानेदार हो जाती है दोनेदार मिट्टी में हवा एवं जल का आवागमन सुचारु रूप से होता है ।	अकार्बनिक खादों के मिलाए जाने पर भूमि में इस प्रकार का सुधार नहीं होत पाता ।
(ii) भूमि में वर्षा के कारण होनेवाली भूक्षरण को कम करती है ।	यह क्षमता नहीं पाई जाती ।
(iii) प्रयोग से जल धारण क्षमता बढ़ जाती है ।	जल धारण क्षमता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता ।

(iv) चिकनी मिट्टी में कार्बनिक खाद के प्रयोग से भुरभुरापन उत्पन्न हो जाती है और जब यह बलुई जमीनों में मिलायी जाता है । तो उन्हें दानेदार बना देती है । इससे यह सिद्ध होता है कि सभी प्रकार की भूमि के लिए उपयुक्त होती है ।	सभी उर्वरक सभी प्रकार की मृदाओं के लिए उपर्युक्त नहीं होते । इसके विपरीत सोडियम युक्त उर्वरकों के अधिक प्रयोग से मृदा-गठन बिगड़ जाती है ।
	इस प्रकार का गुण नहीं पाया जाता ।

(v) प्रयोग से मृदा-जल का वाष्पण द्वारा कम ह्रास होता है ।

2. भूमि पर रासायनिक प्रभाव

(i) संचित पोषक तत्त्व पौधों की आवश्यकतानुसार धीरे-धीरे मुक्त होते रहते हैं । इसके अपघटन के फलस्वरूप कुछ आहमोन्स तथा एन्टी बायोटिक भी उत्पन्न होते हैं जो पौधों के लिए लाभकारी है ।	उर्वरकों विशेषकर नेत्रजनिक के पोषक तत्व अधिक समय तक जमीन में नहीं रुकते । तुरन्त पौधों द्वारा ले लिए जाते हैं । फॉस्फेटिक उर्वरकों को अधिकांश भाग तथा नेत्रजनिक पोटाश्कि उर्वरकों का थोड़ा-सा अंश भूमि में स्थिर हो जाता है ।
(ii) प्रयोग में भूमि में CO_2 तथा H_2CO_3 उत्पन्न होते हैं जो कुछ खनिजों को घुलाकर पौधों के लिए पोषक तत्त्व उपलब्ध करते हैं ।	इस प्रकार का गुण नहीं पाया जाता है ।
(iii) मृदा की उभय प्रतिरोधी क्षमता (Buffering capacity) को बढ़ाती है ।	इस प्रकार का गुण नहीं पाया जाता ।
(iv) भूमि में अम्लीयता या क्षारीयता नहीं पैदा करती यद्यपि जीवांश पदार्थों के अपघटन से थोड़ी बहुत मात्रा में H_2CO_3 उत्पन्न होते हैं जिसका प्रभाव लाभकारी है ।	कुछ उर्वरक के लगातार व्यवहार करने से PH पर प्रभाव पड़ता है जैसे-अमोनियम सल्फेट, अमोनियम नाइट्रेट आदि के प्रयोग से अम्लता और बेसिक स्लैग आदि से क्षारीयता उत्पन्न होती है ।
(v) पोषक तत्त्वों के निक्षलन (Leaching) को कम करती है	ऐसा गुण नहीं पाया जाता है ।
(iii) बहुमात्रिक तत्वों के अलावा सूक्ष्म मात्रिक तत्त्व भी प्रदान करती है ।	सामान्यत: सूक्ष्म मात्रिक तत्त्व नहीं पाए जाते ।

3. भूमि पर जैविक प्रभाव-

(i) अधिकांश लाभकारी मृदा-सूक्ष्म जीवों की वृद्धि के लिए कार्बनिक पदार्थ एवं ऊर्जा के रूप में आवश्यक है ।	उर्वरकों में भी नेत्रजन, स्फुर एवं पोटाश ग्रहण करते हैं परन्तु कार्बन के लिए कार्बनिक खादों का सहारा लेना पड़ता है ।
(ii) कार्बनिक पदार्थों के अपघटन से उत्पन्न अमोनिया का नाइट्रीकरण तथा नाइट्रोजन यौगिकीकरण आदि क्रियाएँ सूक्ष्म जीवों पर ही निर्भर करती है । यदि कार्बनिक पदार्थ से उत्पन्न अमोनिया को सूक्ष्म जीव नाइट्रेट में	सूक्ष्म जीवों की क्रियाशीलता को बढ़ा देते हैं । जबकि कार्बनिक खादों के अपघटन से नेत्रजन पहले अमोनिया के रूप में ही उत्पन्न होती है जिसका नाइट्रीकरण आवश्यक होता है, कुछ नेत्रजनित उर्वरक ऐसे भी है

बदलें तो अधिकांश पौधे उस नेत्रजन को गहण न कर सकें ।	जो नाइट्रेट के रूप में नाइट्रोजन प्रदान करते हैं ।
(iii) केंचुओं आदि को भोजन कार्बनिक खादों से मिलता है ये जीव भूमि में बिल बनाकर उनके वातन तथा जल-निवास में सुधार करते हैं ।	ये जीव अपना जीवन-निर्वाह उर्वरकों के सहारे नहीं कर सकते ।
4. प्रयोग करने में भेद–	
(i) पोषक तत्त्वों की प्रतिशतता कम होती है अत: इन्हें अधिक मात्रा में प्रयोग किया जाता है ।	पोषक तत्वों की प्रतिशतता अधिक होने के कारण कम मात्रा की आवश्यकता होती है ।
(ii) फसलों की बोआई या रोपाई के एक से डेढ़ माह पूर्व में डालना हितकर होता है ताकि वे भलीभाँति सड़ गल जाएँ और पोषक तत्त्व को समय पर प्रदान करने लगें ।	इन्हें पहले नहीं डाला जाता । बोआई-रोपाई के समय या उससे 2-3 दिन पूर्व ही खेतों में डाला जाता है
(iii) बिखेरकर खेत की जुताई करके मिट्टी में भली प्रकार मिलना आवश्यक होता है ।	खड़ी फसलों में भी प्रयोग किया जाता है । फास्फेटी उर्वरकों को इस प्रकार डाला जाता है कि वे पौधों के जड़ क्षेत्र से पहुँच जाएँ । अन्य उर्वरकों को भूमि से भली प्रकार मिलाना उपयुक्त होता है ।
(iv) सामान्यत: खड़ी फसलों में प्रयोग नहीं किया जाता ।	फास्फेटी उर्वरकों के अलावा अन्य उर्वरकों को खड़ी फसलों में प्रयोग किया जा सकता है ।
(v) पानी में घोकर पौधों पर छिड़का नहीं जाता और न ही घोल में व्यवहार किया जाता है ।	कुछ रासायनिक उर्वरकों को द्रव के रूप में प्रयोग किया जा सकता है औ कुछ को जलीय विलयन के रूप में । यूरिया का तो पर्णिय छिड़काव (Foliar Spray) भी किया जाता है ।

डॉ० किशोर कुमार

❋❋❋

पाठ–1

1757 से 1857 तक भारतीय राजनीति का संक्षिप्त वर्णन

1756 ई० में अलीवर्दी खाँ की मृत्यु के बाद सिराजुद्दौला बंगाल की गद्दी पर बैठा । नवाब इस समय अपने आंतरिक कलह से ग्रस्त था । उसको यह अनुभव हुआ कि अंग्रेज हमारे गृह शत्रुओं को शह दे रहे हैं । नवाब का यह संदेह और सुदृढ़ तब हो गया जब उन्होंने फोर्ट विलियम (कलकत्ता) की किलेबन्दी करना प्रारम्भ कर दिया ।

सिराजुद्दौला के विरुद्ध राज्य में असन्तोष व्याप्त था, इसमें कोई संदेह नहीं है । नवाब अलीवर्दी खाँ ने अपनी हिन्दू प्रजा के साथ सद्व्यवहार किया था और उन्हें राज्य में बड़े-बड़े पद प्रदान किये थे । परन्तु सिराजुद्दौला धार्मिक दृष्टि से कट्टर था। उसने धार्मिक कट्टरता की नीति आरम्भ की थी जिससे हिन्दू असंतुष्ट थे । इसके अतिरिक्त नवाब

ने राज्य के बड़े पदाधिकारियों तथा हिन्दू सेठों को भी असंतुष्ट कर दिया था । रायबल्लभ को दीवान पद से हटा दिया गया था । बंगाल का जगतसेठ जो बहुत धनवान हिन्दू व्यापारी था, उसका अपमान किया गया था और मीरजाफर को मीर बख्शी पद से हटा दिया गया था ।

भारी हौसले मगर अनुचित जल्दीबाजी और अपर्याप्त तैयारी के साथ सिराज-उद-दौला ने कासिम बाजार के अंग्रेजी कारखाने पर कब्जा कर लिया । उसके बाद वह अपनी आसन्न जीत को मनाने के लिए कलकत्ता चला गया । इस तरह अंग्रेजों को अपने जहाजों से भाग निकलने दिया । यह गलती अपने शत्रु की शक्ति का सही अन्दाज न होने के कारण हुई । अंग्रेज अधिकरियों ने समुद्र के किनारे फुल्ता में आश्रय लिया । वहाँ वे अपनी नौ-सैनिक श्रेष्ठता के कारण सुरक्षित थे । वहाँ वे मद्रास से सहायता आने की प्रतीक्षा करने लगे । इसी बीच उन्होंने नवाब के दरबार के प्रमुख व्यक्तियों के साथ मिलकर साजिश और विश्वासघात का जाल बिछाया । इन प्रमुख व्यक्तियों में थे । मीरजाफर (मीरबख्शी), मानिकचन्द (कलकत्ता का प्रभारी अधिकारी), अमीचन्द (एक धनी सौदागर), जगत सेठ (बंगाल का सबसे बड़ा बैंकर) और आदिम खाँ जिसके अधीन नवाब की सेना का बहुत बड़ा भाग था । मद्रास से एक शक्तिशाली नौ सेना और पैदल फौज एडमिरल बाटसन तथा कर्नल क्लाइव के अधीन आई । क्लाइव ने 1757 ई० के प्रारम्भ में कलकत्ता को फिर से जीत लिया तथा नवाब को अंग्रेजों की सारी माँगें मानने के लिए मजबूर किया । मगर अंग्रेज इतने से सन्तुष्ट नहीं थे, उनका लक्ष्य काफी ऊँचा था । उन्होंने सिराजुद्दौला की जगह एक कठपुतली बैठाने का फैसला किया था ।

जून 1757 ई० में अंग्रेजों एवं अन्य षडयन्त्रकारियों में एक सन्धि हो गयी । जब षडयन्त्र की योजना पूरी हो गयी और हर प्रकार का समझौता हो गया, तब अमीचन्द ने धमकी दी कि यदि उसे 30 लाख रुपया और नवाब के खजाने का 50% भाग देने का वचन नहीं दिया गया तो वह सम्पूर्ण षडयन्त्र से नवाब को परिचित करा देगा । अमीचन्द इस षडयन्त्र में दोनों पक्षों के बीच बातचीत और समझौता करा रहा था और उसे इस षडयन्त्र का पूरा ज्ञान था । क्लाइव ने इस कारण दो सन्धियाँ तैयार करायीं । एक सफेद कागज पर जो सच्ची थी और दूसरी लाल कागज पर जो झूठी थी और जिसमें अमीचंन्द्र की शर्तों को स्वीकार किया गया था । झूठी सन्धि के कागज पर वाटसन ने हस्ताक्षर करने से इन्कार कर दिया । इस कारण क्लाइव ने उस पर जाली हस्ताक्षर बना दिये और इस प्रकार अमीचन्द को धोखा देकर सन्तुष्ट कर दिया और षडयंत्र पूरा हो गया ।

बंगाल की गद्दी पर मीरजाफर को बिठाने के लिए युवा नवाब के दुश्मनों द्वारा रचे गये षडयंत्र में शामिल होने के बाद उन्होंने सिराजुद्दौला के सामने कई असम्भव मांगें रखीं । दोनों पक्षों ने महसूस किया कि उनके बीच युद्ध अवश्यम्भावी है । दोनों पक्षों के बीच मुर्शिदाबाद से 20 मील दूर पलासी के मैदान में 23 जून 1757 ई० को मुकाबला हुआ । प्लासी की निर्णायक लड़ाई केवल नाम की लड़ाई थी । कुल मिलाकर अंग्रजों को 29 आदमियों और नवाब को करीब 500 आदमियों से हाथ धोने पड़े । नवाब की फौज के एक बड़े भाग ने, जिसका नेतृत्व विश्वासघाती मिरजाफर और राय दुर्लभ कर रहे थे, लड़ाई में भाग नहीं लिया और वह कलकत्ता की ओर बढ़ा तथा 20 जून 1756 ई० को फोर्ट विलियम को अपने अधिकार में कर लिया । नवाब के थोड़े सैनिकों ने ही जिनका नेतृत्व मीर मदन और मोहन लाल कर रहे थे, बहादुरी के साथ जमकर दुश्मन का मुकाबला किया । नवाब को भागने के लिए मजबूर होना पड़ा । उसे पकड़ लिया गया और मीरजाफर के बेटे मीरेन ने उसे मौत के घाट उतार दिया ।

अंग्रेजों ने मीरजाफर को बंगाल का नवाब घोषित कर दिया और अपना इनाम पाने के लिए मुर्शिदाबाद पहुँच गये । कम्पनी को बंगाल, बिहार और उड़ीसा में मुक्त-व्यापार का निर्विवाद अधिकार दे दिया गया । उन्हें कलकत्ते के पास 24 परगना की जमींदारी भी मिली । मीरजाफर ने कलकत्ता पर आक्रमण के लिए 1,77,00,000 रुपया मुआवजे के रूप में कम्पनी और शहर के व्यापारियों को दिये ।

मीरजाफर एक साहसहीन और अयोग्य व्यक्ति था । वह बंगाल का नाम-मात्र का शासक रहा । वह न शासन की देखभाल कर सका, न नवाब के सम्मान की रक्षा कर सका और न अंग्रेजों की बढ़ती हुई लालसाओं की सन्तुष्टि कर सका ।

फरवरी, 1760 ई० में क्लाइव भारत से इंगलैण्ड वापस गया और उसी वर्ष मीरजाफर को गद्दी छोड़ने के लिए बाध्य किया गया ।

उसकी जगह मीरकासिम को बंगाल का नवाब बनाया गया । मीरकासिम योग्य तथा कुशल शासक था । वह अंग्रेजों से अपने को पूर्णत: मुक्त रखना चाहता था । परिणामस्वरूप उसने समस्त भारतीय व्यापारियों को अंग्रेज व्यापारियों की भाँति कर मुक्त व्यापार करने की छूट दी जिसके फलस्वरूप अंग्रेजों ने उसे 1763 ई० में गद्दी से हटाकर मीरजाफर को दुबारा बंगाल का नवाब बना दिया ।

मीरजाफर के समय पुन: अव्यवस्था फैलने लगी । 5 फरवरी 1765 ई० को उसकी मृत्यु हो गयी थी ।

मीरकासिम और अंग्रेजों के बीच चल रहा विवाद 10 जून 1763 ई० को युद्ध में परिवर्तित हो गया । सितम्बर तक ही नवाब की तीन स्थानों पर पराजय हुई । इससे मीरकासिम का साहस टूटने लगा । ऐसी निराशा के समय वह पटना गया, जहाँ अंग्रेज गवर्नर एलिस से उसका मुख्य झगड़ा था । पटना में उसने कुछ भारतीय और अंग्रेज बन्दियों को कत्ल कर दिया जो पटना का हत्याकांड कहलाता है । परन्तु मीरकासिम को सफलता प्राप्त न हो सकी । वह अवध की सीमाओं में भाग गया ।

मीरकासिम ने अवध के नवाब शुजाउद्दौला से सहायता मांगी और उसकी सेना-व्यय के लिए 11 लाख रुपया प्रतिदिन देना स्वीकार किया । शुजाउद्दौला ने इस अवसर को बंगाल में अपनी शक्ति बढ़ाने के लिए उपयुक्त समझा और वह मीरकासिम को उसकी गद्दी वापस दिलाने में सहायता देने के लिए तैयार हो गया । मुगल-बादशाह शाहआलम भी उस समय अवध में ही था और वह भी इस योजना में सम्मिलित हो गया ।

1764 ई० में अवध के नवाब और मुगल बादशाह शाहआलम की सम्मिलित सेनाओं ने बिहार की सीमा में प्रवेश किया । अंग्रेजों की ओर से मेजर हेक्टर मुनरो ने इस सेना का मुकाबला किया और 23 अक्टूबर 1764 ई० को बक्सर का महत्त्वपूर्ण युद्ध हुआ । नवाब और मुगल बादशाह की सेना की पराजय हुई । 3 मई 1765 ई० को कड़ा में एक युद्ध हूआ । उसके पश्चात अवध का नवाब और मुगल बादशाह अंग्रेजों के कदमों में हो गये । मीरकासिम यहाँ से भी भाग गया और 1777 ई० में दिल्ली के निकट बहुत निर्धनता की स्थिति में उसकी मृत्यु हुई ।

बक्सर के युद्ध ने अंग्रेजों के सम्मुख इतने मार्ग खोल दिये थे और शक्ति बढ़ाने की इतनी सम्भावनायें प्रस्तुत कर दी थीं कि इसका उत्तरदायित्व उठाने की शक्ति अंग्रेज कम्पनी में नहीं थी । क्लाइव ने अपनी शक्ति की सीमा को देखते हुए ऐसा प्रबन्ध किया जिससे अंग्रेजों को विशेष उत्तरदायित्व न उठाना पड़े, भारत तथा यूरोप में अंग्रेजों के विरुद्ध एकदम ईर्ष्या की भावना जागृत न हो जाय और अंग्रेज कम्पनी को अनावश्यक युद्धों में न उलझना पड़े । इनको छोड़कर जिस प्रकार भी अंग्रेजों के हितों की सुरक्षा सम्भव थी, उसने इस राजनैतिक समझौते के द्वारा प्राप्त करने का प्रयत्न किया । यहाँ यह बात विशेष ध्यान रखने की है कि इन सभी समझौते करने में क्लाइव का उद्देश्य कम्पनी की सीमाओं को बढ़ाने के स्थान पर बंगाल, बिहार और उड़ीसा की सीमाओं की पूर्ण सुरक्षा करना था जो अंग्रेज कम्पनी की शक्ति का आधार था । इसमें संदेह नहीं कि क्लाइव के इस समझौते ने उसके इस उद्देश्य की पूर्ति की थी ।

दक्षिण भारत

हैदराबाद के बाद दक्षिण भारत में दूसरी महत्वपूर्ण शक्ति के रूप में मैसूर का उदय हुआ था । उसका नेतृत्व हैदर अली ने किया । मैसूर राज्य ने विजयनगर साम्राज्य के अन्त होने के बाद से ही अपनी अस्थिर स्वतन्त्रता बनाए रखी थी । 18वीं शताब्दी के प्रारंभ में ही दो मन्त्रियों नजारात (सर्वाधिकारी) और देवराज (दुल्वाई) ने मैसूर में सत्ता हथिया ली थी और राजा चिक्का कृष्ण राज उनके हाथों की कठपुतली मात्र हो गया था । हैदर अली का जन्म 1721 ई० में एक अज्ञात परिवार में हुआ था । उसने अपनी जिन्दगी मैसूर की फौज के एक छोटे अफसर के रूप में आरंभ की । अशिक्षित होते हुए भी वह तीव्र बुद्धि का था । वह अत्यन्त उद्यमी, निर्भीक और दृढ़-संकल्पी था । वह एक प्रतिभाशाली सेनापति और चालाक कूटनीतिज्ञ था ।

हैदर अली को तुरन्त ही उन लड़ाइयों में भाग लेने के अवसर मिले जिनमें मैसूर बीस सालों से अधिक तक फँसा रहा । इन अवसरों का चालाकी से इस्तेमाल कर वह धीरे-धीरे मैसूर की फौज में ऊपर उठ गया । उसने जल्द ही पश्चिमी फौजी ट्रेनिंग के कायदों को पहचाना और अपने अधीन जो सैनिक थे उन्हें उस तरह का प्रशिक्षण दिया । उसने फ्रांसीसी विशेषज्ञों की सहायता से डिंडिगुल में 1755 ई० में एक आधुनिक शस्त्रागार स्थापित गिया । उसने 1761 में तंजाराव का तख्ता पलट दिया और मैसूर राज्य पर अपना अधिकार कायम किया । उसने विद्रोही पोलिगोरों (जमींदारों) पर पूरा नियन्त्रण कायम किया और बिदनुर, सूंडा, सेला, कनारा और मालाबार के इलाकों को जीत लिया । निरक्षर होते हुए भी वह एक कुशल प्रशासक था । उसने मैसूर पर अपना कब्जा तब जमाया जब वह कमजोर और विभाजित राज्य था और उसे जल्द ही एक प्रमुख भारतीय शक्ति बना दिया । वह धार्मिक सहिष्णुता की नीति पर चला । उसका पहला दीवान और अन्य अनेक अधिकारी हिन्दू थे ।

अपनी सत्ता के लगभग आरम्भ से ही वह मराठा सरदारों, निजाम और अंग्रेजों के साथ लड़ाई में लगा रहा । उसने 1769 में अंग्रेजी फौजों को बार-बार हराया और मद्रास के पास तक पहुँच गया । वह द्वितीय आंग्ल-मैसूर युद्ध के दौरान 1782 में मर गया । उसके स्थान पर उसका बेटा टीपू गद्दी पर बैठा ।

टीपू सुल्तान ने अंग्रेजों के हाथों 1799 में मारे जाने तक मैसूर पर शासन किया । वह जटिल चरित्र वाला व्यक्ति था । वह नये विचारों को ढूँढ़ निकालने वाला व्यक्ति था । समय के साथ अपने को बदलने की उसकी इच्छा के प्रतीक एक नये कैलेंडर को लागू करना, सिक्का ढलाई की नई प्रणाली काम में लाना तथा माप-तौल के नए पैमानों को अपनाना था । उसके अपने पुस्तकालय में धर्म, इतिहास, सैन्य विज्ञान, औषधि विज्ञान और गणित जैसे विविध विषयों की पुस्तकें थीं । उसने फ्रांसीसी क्रांति में गहरी दिलचस्पी ली । उसने श्रीरंगपट्टन में स्वतंत्रता वृक्ष लगाया और वह जैकोबिन क्लब का एक सदस्य बन गया । उसकी सांगठनिक क्षमता का प्रमाण यह है कि उन दिनों जब भारतीय फौजों के बीच अनुशासनहीनता आम थी, उसके सैनिक अन्त तक अनुशासित और उसके प्रति वफादार रहे । उसने जागीर देने की प्रथा को खत्म करके राजकीय आय बढ़ाने की कोशिश की । उसने पोलिगारों की पैतृक संपत्ति को कम करने की कोशिश की । मगर उसका भू-राजस्व उतना ही ऊँचा था जितना अन्य सम-सामयिक शासकों का । वह पैदावार का एक-तिहाई हिस्सा तक भू-राजस्व के रूप में लेता था । मगर उसने असबाबों की वसूली पर रोक लगा दी। वह भू-राजस्व में छूट देने में उदार था ।

उसकी पैदल सेना यूरोपीय ढर्रे पर चलती थी । इसीलिए वह बन्दूकों और संगीनों से सुसज्जित रहती थी । इनका निर्माण मैसूर में ही होता था । उसने 1796 के बाद एक आधुनिक नौ सेना बनाने की भी कोशिश की । इस उद्देश्य से उसने दो गोदीबाड़े कायम किए । जहाजों के प्रतिरूप (मॉडल) सुलतान ने खुद दिए । व्यक्तिगत जीवन में वह दुर्गुणों से मुक्त था और अपने को विलास से दूर रखता था । वह दुस्साहसी और सेनापति के रूप में प्रतिभाशाली था । मगर वह बहुत जल्दीबाजी में कार्रवाई करता था । उसका स्वभाव ढुलमुल था ।

एक राजनेता के रूप में उसने 18वीं सदी के किसी भी अन्य भारतीय शासक से अधिक अच्छी तरह उस खतरे को पहचाना जो अंग्रेजों ने दक्षिणी भारत और अन्य भारतीय शक्तियों के लिए पैदा कर दिया था । वह उदीयमान अंग्रेजी सत्ता के अटल दुश्मन के रूप में डटा रहा । अंग्रेज भी भारत में उसे अत्यन्त खतरनाक दुश्मन के रूप में देखते थे ।

यद्यपि मैसूर सम-सामयिक आर्थिक पिछड़ेपन से मुक्त नहीं था तथापि हैदर अली और टीपू के नेतृत्व में उसने आर्थिक रूप से तरक्की की । यह बात उसके पहले की स्थिति या देश के अन्य हिस्सों की तत्कालीन अवस्था से उसकी तुलना करने पर स्पष्ट हो जाएगी । जब टीपू को 1799 में हराकर और मारकर अंग्रेजों ने मैसूर पर अपना अधिकार कर लिया तब उन्हें यह देखकर बड़ा अचरज हुआ कि मैसूर का किसान मद्रास के उनके अपने अधिकार-क्षेत्र के किसान की तुलना में अधिक समृद्ध था । सर जान शोर ने जो 1793 से 1798 तक गवर्नर-जनरल रहा, बाद में लिखा कि "उसके अधिकार-क्षेत्र के किसान पूरी तरह सुरक्षित हैं और उनके श्रम को प्रोत्साहित किया जाता है तथा उन्हें पारिश्रमिक दिया जाता है ।" लगता है कि टीपू ने आधुनिक व्यापार और उद्योग के महत्व को पूरी तरह समझा था। वास्तव में भारतीय शासकों में वही अकेला था जिसने सैन्य शक्ति के आधार के रूप में आर्थिक शक्ति का महत्व

समझा था । विदेशी कर्मियों को विशेषज्ञ के रूप में लाकर तथा अनेक उद्योगों को राजकीय सहायता देकर उसने आधुनिक उद्योग लगाने के लिए कुछ कोशिशें कीं । उसने व्यापार बढ़ाने के लिए फ्रांस, तुर्की, ईरान और पेगू में राजदूत भेजे । उसने चीन के साथ भी व्यापार किया । यहाँ तक कि उसने यूरोपीय कंपनियों के ढर्रे पर एक व्यापारिक कंपनी बनाने की कोशिश की ।

कुछ अंग्रेज इतिहासकारों ने टीपू को धर्मान्ध बतलाया है । मगर तथ्य इसका समर्थन नहीं करते । यद्यपि वह अपने धार्मिक विचारों में रूढ़िवादी था तथापि अन्य धर्मों के प्रति अपने रूख में सहिष्णु और प्रबुद्ध था । श्रृंगेरी मंदिर को मराठा घुड़सवारों ने 1791 में लूट लिया । टीपू ने इस मंदिर की देवी शारदा की मूर्ति को बनाने के लिए धन दिया। उसने इसको और अन्य कई मंदिरों को नियमित रूप से अनुदान दिए । श्री रंगनाथ का मशहूर मंदिर उसके महल से केवल 100 गज की दूरी पर था ।

18वीं शताब्दी के आरम्भ में केरल कई सामंती सरदारों और राजाओं के बीच बँटा हुआ था । चार अत्यन्त महत्वपूर्ण राज्य थे, जमोरिन के अधीन कालीकट, चिराक्कल, कोचीन और त्रावणकोर (तिरूबितामकुर) । त्रावणकोर राज्य को 1729 के बाद 18वीं सदी के एक अग्रणी राजनेता राणा मार्तण्ड वर्मा के नेतृत्व में प्रमुखता मिली । उसमें विलक्षण दूरदर्शिता तथा दृढ़-संकल्प एवं साहस और निर्भीकता का सामंजस्य था । उसने सामंतों को शान्त कर दिया, क्विलोन और इलायादाम को जीत लिया और डच लोगों को हराकर केरल में उनकी राजनीतिक सत्ता खत्म कद दी । उसने यूरोपीय अफ़सरों की मदद से पश्चिमी मॉडल के आधार पर एक शिक्तिशाली फौज का संगठन किया और उसे आधुनिक हथियारों से सुसज्जित किया । उसने एक आधुनिक शस्त्रागार भी बनाया । मार्तण्ड वर्मा ने अपनी इस फौज का इस्तेमाल अपना राज्य उत्तर की ओर बढ़ाने के लिए किया । त्रावणकोर की सीमाएँ जल्द ही कन्याकुमारी से कोचीन तक फैल गयीं। उसने सिंचाई की अनेक व्यवस्था की, संचार के लिए सड़के और नहरें बनायीं तथा व्यापार को सक्रिय प्रोत्साहन दिया।

केरल के तीन राज्यों कोचीन, त्रावणकोर और कालीकट के 1763 तक सभी छोटे राजवाड़ों को विलीन या अधीन कर लिया । हैदर अली ने केरल पर अपना आक्रमण 1766 में शुरू किया और अन्त में कालीकट के जमोरिन के इलाकों सहित कोचीन तक उत्तरी केरल को हड़प लिया ।

18वीं शताब्दी में मलयाली साहित्य में एक असाधारण पुनर्जीवन देखा गया । यह अंशत: केरल के राजाओं और सरदारों के कारण हुआ जो साहित्य के महान संरक्षक थे । 18वीं सदी के उत्तरार्द्ध में त्रावणकोर की राजधानी त्रिवेन्द्रम संस्कृत विद्वत्ता का एक प्रसिद्ध केन्द्र बन गया । मार्तण्ड वर्मा का उत्तराधिकारी राम वर्मा स्वयं एक कवि, संगीतज्ञ, प्रसिद्ध अभिनेता और सुसंस्कृत व्यक्ति था । वह अंग्रेजी में धारा-प्रवाह बातचीत करता था । उसने यूरोप के मामलों में गहरी दिलचस्पी ली । वह लंदन, कलकत्ता और मद्रास से निकलने वाले अखबारों और पत्रिकाओं को नियमित रूप से पढ़ता था ।

पंजाब–सिक्खों का अभ्युदय

18वीं शताब्दी के अन्त में सुकेरचकिया मिसल के प्रधान रणजीत सिंह ने प्रमुखता प्राप्त कर ली । वह एक ताकतवर और साहसी सैनिक, कुशल प्रशासक तथा चतुर कूटनीतिज्ञ था । वह जन्मजात नेता था । उसने 1799 में लाहौर और 1802 में अमृतसर पर कब्जा कर लिया । उसने सतलज के पश्चिम के सभी सिक्ख प्रधानों को अपने अधीन कर लिया और पंजाब में अपना राज्य कायम किया । बाद में उसने कश्मीर, पेशावर और मुल्तान को भी जीत लिया । पुराने सिक्ख प्रधान बड़े जमींदार और जागीरदार बना दिए गए । उसने मुगलों द्वारा लागू किए गए भू-राजस्व का हिसाब 50 प्रतिशत सकल उत्पादन के आधार पर लगाया था ।

रणजीत सिंह ने यूरोपीय प्रशिक्षकों की सहायता से यूरोपीय ढर्रे पर एक शक्तिशाली अनुशासित और सुसज्जित फौज तैयार की । उसकी नई फौज केवल सिक्खों तक ही सीमित नहीं थी । उसने गोरखों, बिहारियों, उड़ियों, पठानों, डोगरों, तथा पंजाबी मुसलमानों को भी अपनी फौज में भर्ती किया । उसने लाहौर में तोप बनाने के आधुनिक कारखानें

खोले तथा उनमें मुसलमान तोपचियों को काम पर लगाया । कहा जाता है कि उसकी फौज एशिया की दूसरी सबसे अच्छी फौज थी । पहला स्थान अंग्रेजी ईस्ट इण्डिया कम्पनी की फौज का था ।

रणजीत सिंह स्वयम् अपने मंत्रियों और अफसरों का चुनाव करता था । उसका दरबार श्रेष्ठ व्यक्तियों से भरा हुआ था । धर्म के मामले में वह सहनशील तथा उदारवादी था । धर्म-परायण सिक्ख होते हुए भी यह कहा जाता है कि "अपने सिंहासन से उतर मुसलमान फकीरों के चरणों की धूल अपनी लम्बी सफेद दाढ़ी से झाड़ता था । उसके अनेक महत्वपूर्ण मंत्री और सेनापति मुसलमान और हिन्दू थे । उसका सबसे प्रमुख और विश्वासी मंत्री फकीर अजीजउद्दीन था । उसका वित्त मंत्री दीवान दीनानाथ था । वस्तुतः किसी भी दृष्टि से रणजीत सिंह द्वारा शासित पंजाब एक सिक्ख राज्य नहीं था । राजनीतिक सत्ता का इस्तेमाल केवल सिक्खों के फायदे के लिए नहीं होता था । सिक्ख किसान, उतना ही उत्पीड़ित था जितना हिन्दू या मुसलमान किसान था । वस्तुतः रणजीत सिंह के अधीन एक राज्य के रूप में पंजाब का ढाँचा 18वीं शताब्दी के अन्य भारतीय राज्यों की तरह ही था ।

जब 1809 में अंग्रेजों ने रणजीत सिंह को सतलज पार करने से मना कर दिया और नदी के पूरब के सिक्ख राज्यों को अपने संरक्षण में ले लिया तब उसने चुप्पी साध ली क्योंकि उसने महसूस किया कि उसके पास अंग्रेजों से मुकाबला करने की शक्ति नहीं है । इस प्रकार उसनें अपने राजनैतिक यथार्थवाद और सैनिक शक्ति के जरिए अपने राज्य को अंग्रेजों के अतिक्रमण से बचा लिया । मगर वह विदेशी खतरों को हटा नहीं सका तथा उन्हें अपने उत्तराधिकारियों के लिए छोड़ दिया । इसलिए उसकी मृत्यु के बाद जब उसका राज्य सत्ता के लिए तीव्र आन्तरिक संघर्ष का शिकार हो गया तब अंग्रेज आए और उन्होंने उसे जीत लिया ।

अंग्रेजों ने प्रारम्भ से ही साम्राज्यवादी नीति अपनायी थी । विविध उपायों से सहायक सन्धि, गोप-प्रथा की समाप्ति, हड़प नीति अथवा विजय द्वारा साम्राज्य वृद्धि ही अंग्रेजों का ध्येय था । अंग्रेजों ने जमींदारों की जमींदारी समाप्त की, पेन्शन आदि बन्द कर दी, भारतीयों के प्रति अविश्वास की नीति अपनायी तथा उन्हें उच्च पदों से मुक्त कर दिया। सेना पर अपना पूर्ण नियन्त्रण तथा भेद-भाव की नीति आदि ऐसे राजनीतिक कारण थे जिनके फलस्वरूप भारतीयों में असन्तोष व्याप्त हुआ ।

अंग्रेजों ने यद्यपि भारतवर्ष में अपनी प्रभुता स्थापित कर ली थी तथापि वे अपने को मुगल सम्राट के अधीन ही समझते थे । मुगल सम्राट चाहे जितना निर्बल रहा हो, लोकमत उसका आदर करता था । अतः जब अंग्रेजों ने उसके सम्राट की अवहेलना करना प्रारंभ कर दिया तो उन्हें बड़ा कष्ट हुआ । उनका यह असन्तोष धीरे-धीरे बढ़ता गया । अन्त में सन् 1857 ई० में उसी मुगल सम्राट की पताका के नीचे क्रांति का बिगुल बजाकर उन्होंने अंग्रेजों से चिर-संचित अपमानों का बदला लिया ।

देश में कोई भी राज करे, परन्तु उसका समस्त धन एवं उसके सम्पूर्ण साधनों का उपभोग देश के भीतर ही होता था । देश की संपत्ति उसकी सीमाओं के बाहर नहीं जाती थी, परन्तु कम्पनी के राजसत्ता में आने पर परिस्थिति बदल गयी । वह इंगलैंड के आश्रित थी । अतः इंगलैंड का हित सदैव उसके लिए सर्वोपरि था । ऐसी दशा में स्वाभाविक था कि भारतीय स्वार्थो की अपेक्षा स्वदेशीय स्वार्थों को अधिक ध्यान रखती । परिणाम यह हुआ कि भारतवर्ष का धन विदेश जाने लगा । उसका आर्थिक ढाँचा इस प्रकार का बनाया जाने लगा कि अधिकाधिक रूप में उसका शोषण हो । इंगलैंड औद्योगिक क्रांति के पश्चात् संसार का एक कारखाना बन गया था । उसके उत्पादन के लिए कच्चे माल की आवश्यकता थी और बने हुए माल के लिए बाजार की । अतः भारतवर्ष में अंग्रेजी नीति का निर्धारण इन्हीं आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु हुआ । अंग्रेजों की अन्यायपूर्ण नीति के परिणामस्वरूप भारतीय उद्योग-धंधे धीरे-धीरे लुप्त होने लगे । अतः अब देश की जीविका का मुख्य साधन कृषि कर्म रह गया । भारतवर्ष का कच्चा माल प्रचुर मात्रा में इंगलैंड जाने लगा और उसके बदले में यहाँ इंगलैंड निर्मित वस्तुएँ आने लगीं, जिससे इस देश की आर्थिक स्थिति धीरे-धीरे शोचनीय होने लगी ।

सर्वप्रथम पुर्तगालियों ने धर्म परिवर्तन को अपनी राजनीति में स्थान दिया था, उन्हीं से अंग्रेजों ने इसे ग्रहण किया। अंग्रेजों ने यह कार्य बड़े कूटनीतिक ढंग से किया। ईसाई धर्म का प्रचार कार्य प्रायः मिशनरी एवं व्यक्ति विशेष करते थे। बहिर्दृष्टि से ऐसा प्रतीत होता था कि सरकार को इन मिशनरियों एवं व्यक्तियों से कोई सरोकार नहीं परन्तु गुप्त रीति से अंग्रेज सरकार इन्हें सदैव आर्थिक सहायता एवं प्रोत्साहन देती रहती थी। बहुत-से तो अंग्रेज सेना में इसलिए गये थे कि वहाँ भारतीय सिपाहियों के बीच वे अपने धर्म का प्रचार सुगमतापूर्वक कर सकेंगे। इस घृणित कार्य में प्रोत्साहन, प्रसार, प्रलोभन एवं आतंक और भय का उपयोग किया जाने लगा। धर्म परिवर्त्तन करने वाले भारतीय सिपाहियों को ऊँचे-ऊँचे पद दिए जाने लगे। जो लोग इस प्रकार के परिवर्त्तन का विरोध करते थे, उनकी उन्नति का मार्ग अवरुद्ध हो जाता था। परिणामस्वरूप सेना में उत्तरोत्तर असन्तोष बढ़ता गया।

अंग्रेजों ने भारत में अंग्रेजी शिक्षा का प्रसार और भारतीय समाज में अपनी सभ्यता और संस्कृति का प्रचार बड़े जोरों के साथ कर दिया था। अंग्रेजी के जो नये-नये स्कूल खोले गये उसमें सभी जाति एवं धर्म वाले साथ पढ़ते थे। यह व्यवस्था भारतीय परम्परा के विरुद्ध थी। फलस्वरूप भारतीयों के मन में यह भावना उत्पन्न होने लगी कि अंग्रेज भारतीय नवयुवकों को अंग्रेजी की शिक्षा देकर उनमें अंग्रेजियत लाना चाहते हैं और भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति को विनष्ट करना चाहते हैं। अंग्रेजों की रंगभेदी नीति से, जिसके कारण भारतीयों को महत्वपूर्ण पदों से दूर रखा जाता था, भारतीयों के आत्म सम्मान को चोट पहुँची।

प्रशासन में अंग्रेजों ने प्रजातीय भेद-भाव की नीति अपना रखी थी। कार्नवालिस ने भारतवासियों को उच्च पदों से वंचित करके उनके प्रति अविश्वास की मनोवृत्ति को बढ़ावा दिया। शिक्षित तथा सम्मानित भारतीयों के प्रति भी अंग्रेजों का दृष्टिकोण अहंकार भरा होता था।

अंग्रेजों ने भारतवर्ष नहीं जीता था बल्कि भारतीय सैनिकों ने ही उनके लिए अपने देश को गुलाम बना दिया था। कम्पनी की सम्पूर्ण सेना बंगाल, बम्बई एवं मद्रास की रजिडेन्सियों के अन्तर्गत विभक्त थी। इनमें सबसे महत्वपूर्ण बंगाल की सेना थी। इस सेना में उच्च वर्ग के ब्राह्मण और क्षत्रिय सम्मिलित थे। वे अंग्रेजों के विरुद्ध व्याप्त चतुर्दिक सामाजिक असन्तोष से अप्रभावित न रह सके। सेना के भीतर और बाहर होने वाले अंग्रेजों के कुत्सित धर्म-प्रचार ने इन्हें क्षुब्ध कर दिया। अवध के नवाब एवं अन्य देशी राजाओं के साथ जो अनीति और अत्याचार के कार्य हुए थे, उनसे भारतीय जनता तो व्यथित थी ही, सैनिक वर्ग भी उनसे सहानुभूति नहीं रखता था।

1857 ई० की क्रांति में, क्रांति के नेता बहादुर शाह, नाना साहब और उसके वकील अजीमुल्ला खाँ, ताँत्या टोपे ने क्रांति की तारीख 31 मई रखी थी किन्तु उसके पहले ही 29 मार्च को बैरकपुर की छावनी में मंगल पांडेय ने विद्रोह किया, उन्हें फांसी हो गयी। फिर 3 मई को लखनऊ की गन फैक्ट्री में विद्रोह हुआ। किन्तु वह शीघ्र दबा दिया गया फिर 9 मई को मेरठ के बागी सिपाहियों को जब लम्बी-लम्बी सजाएँ सुनाई गई तो 10 मई को मेरठ की सेना ने विद्रोह कर दिया, उन्होंने जेल तोड़ दी, बंदी सिपाहियों को स्वतन्त्र कर दिया और फिर मेरठ में हिंसात्मक कार्यवाही करके 11 मई को दिल्ली चले गये। उन्होंने दिल्ली विजय की और बहादुरशाह को सम्राट घोषित कर दिया।

जनवरी 1857 से चर्बी वाले कारतूसों की खबर बंगाल सेना में फैलनी आरम्भ हो गयी थी। यह खबर डमडम के तोपखाने में काम करने वाले एक खलासी ने एक ब्राह्मण सिपाही को व्यंग्यात्मक रूप से दी थी। इससे सेना की टुकड़ी (34एन० आई०) में सबसे अधिक अशांति फैली। इसी टुकड़ी की कुछ कम्पनियाँ फरवरी में वरहामपुर (कलकत्ता से 120 मील दूर) पहुँची और 26 फरवरी 1857 ई० को बरहामपुर से 19 एन० आई० के सिपाहियों ने चर्बी लगे कारतूसों का प्रयोग करने से इन्कार किया। सिपहियों द्वारा बाद में आज्ञा पालन पर भी कैनिंग ने उस पूरी टुकड़ी को भंग करने के आदेश दे दिये। इससे 34 एन० आई० के सैनिकों में असन्तोष बढ़ा। इसी प्रकार की घटना अंबाला में हुई। 2 मई को ऐसी ही एक घटना लखनऊ में 7वीं 'अवध रेजीमेंट' के साथ हुई, जिसने कारतूसों का प्रयोग करने से इन्कार किया। अवध के चीफ कमीश्नर हेनरी कारेन्से ने अगले दिन इस रेजिमेन्ट को भंग कर दिया।

1857 ई० को भारतीय क्रांति का अन्त हो गया । अदम्य वीरता, उत्साह एवं त्याग के होते हुए भी क्रांतिकारी अपने लक्ष्य में सफल न हुए ।

विद्रोह के नेताओं में सैनिक कुशलता तथा संगठित होकर कार्य करने का अभाव था । भारतीय सैनिक तथा नेताओं के पास अंग्रेजी सेना तथा शासकों की तुलना में साधन बहुत कम थे ।

विद्रोहियों के उत्साह एवं प्रेरणा में कोई कमी नहीं थी, उनके लिए सामंतीय नेतृत्व ही पर्याप्त था । राष्ट्रीयता का उस समय तक कोई प्रश्न ही नहीं था । दुर्भाग्य की बात यह थी कि विभिन्न सामंती नेता आपस में एकमत नहीं हो सके ।

क्रांतिकारियों के समक्ष एक निश्चित लक्ष्य नहीं था । दिल्ली के पतन और बहादुरशाह के बन्दीकरण के पश्चात उनका रहा-सहा लक्ष्य भी जाता रहा । अंग्रेजों ने इस स्थिति का पूरा लाभ उठाया ।

क्रांति के पश्चात इंगलैंड की पार्लियामेंट ने 1858 ई० का कानून पास किया जिसके द्वारा कम्पनी का भारत में शासन समाप्त कर दिया गया । भविष्य में शासन-प्रबन्ध महारानी विक्टोरिया के नाम से इंगलैंड की पार्लियामेंट के हाथ में चला गया । भारतवर्ष के लिए इंगलैंड में एक सेक्रेटरी ऑफ स्टेट की नियुक्ति हुई । 15 सदस्यों की एक कौन्सिल नियुक्त की गई । भारतवर्ष की सम्पूर्ण जल, थल सेना पर इंगलैंड का अधिकार घोषित कर दिया गया । नवम्बर 1858 ई० में इलाहाबाद के दरबार में लार्ड कैनिंग ने महारानी विक्टोरिया की घोषणा सुनाई जिसमें भारतवासियों को उनके धर्म, प्रथा और विश्वासों में हस्तक्षेप न करने का आश्वासन दिया गया । गोद लेने का अधिकार दिया गया । समस्त संधियों का पालन करने व भविष्य में साम्राज्य न बढ़ाने का वचन भी दिया गया ।

❋❋❋

पाठ–2

19वीं शताब्दी में भारत में धार्मिक आन्दोलन–ब्रह्म समाज, आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन एवं अलीगढ़ आंदोलन

छठी शताब्दी ई० पूर्व के धर्म सुधार आंदोलन और 12 वीं सदी के भक्ति आंदोलन के पश्चात् भारतीय दृष्टिकोण में सुधार लाने के लिए 19वीं सदी में पुनः धार्मिक आन्दोलन हेतु एक नई जागरूकता की बात पाते हैं । शिक्षा, विज्ञान व तकनीकी ज्ञान आदि के बारे में यूरोपीय लोगों की तुलना में भारतवासियों ने अपने को काफी पीछे पाया । विवेकानन्द ने यहाँ लोगों का सही चित्रण करते हुए बताया कि यहाँ के नौजवानों के चेहरों पर सैकड़ों वर्षों की दरिद्रता और निराशा की गहरी झुर्रियाँ पड़ी हैं । जागरूक नेताओं ने महसूस किया कि अंग्रेजों द्वारा यहाँ के लोग आर्थिक दृष्टिकोण से कुचल कर निर्जीव बना दिए गए थे । उनके अंधकारमय भविष्य में अच्छे दिन की कोई किरण नहीं दिखाई दे रही थी । बाहरी तत्वों के द्वारा उत्पन्न समस्याओं के अलावा आंतरिक अंध-विश्वास एवं शोषण से भी यहाँ के लोग कम पीड़ित नहीं थें। इस समय कुछ चिंतनशील भारतीयों को पाते हैं, जिन्होंने न केवल इन बुनियादी समस्याओं को पकड़ा बल्कि इन्हें दूर करने का प्रयास किया ।

राममोहन राय और ब्रह्म समाज–इस नवजागरण में सर्वाधिक प्रभावशाली हाथ राममोहन राय का था । इस महापुरुष का जन्म 1772 ई० में बंगाल में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था, जो किसी भी अन्य परिवार के समान प्रचलित रूढ़ियों और विश्वासों का अन्ध उपासक था । स्वयं राममोहन राय का विवाह बाल्यावस्था में ही तीन बार हुआ, जिनमें से एक कुछ समय में ही स्वर्गीय हो गयीं । राममोहन राय की शिक्षा-दीक्षा कुछ ऐसी हुई थी, जिसने उन्हें भावी जीवन के महत्वपूर्ण कार्य के लिए तैयार कर दिया । राममोहन राय ने घर पर फारसी का कुछ अध्ययन किया और गाँव

की पाठशाला में बंगला की शिक्षा प्राप्त की । तदुपरान्त वे पटना आए जो उस समय इस्लामी ज्ञान का प्रसिद्ध केन्द्र माना जाता था । यहाँ उन्होंने फारसी एवं अरबी का अध्ययन किया । यहाँ पहली बार उन्हें कुरान पढ़ने का मौका मिला, जिसमें उन्हें एकेश्वरवाद की प्रथम झलक मिली । कहते हैं कि पटना की शिक्षा के बाद वे बनारस गये, उन्होंने संस्कृत धर्म-ग्रन्थों का अध्ययन किया । इस प्रसिद्ध तीर्थ स्थान में हिन्दू धर्म का व्यावहारिक रूप भी देखने को मिला । वस्तुतः हिन्दू धर्म ने किस प्रकार प्रचलित अनुष्ठानों का रूप ग्रहण कर लिया है और किस प्रकार हिन्दू धर्म का असली रूप भूलकर मूर्त्ति पूजन ही सब कुछ समझ बैठे हैं, इसका प्रत्यक्ष अनुभव उन्हें यहीं हुआ । इसके परिणामस्वरूप राममोहन के हृदय में हिन्दू धर्म के प्रचलित प्रथाओं और मान्यताओं के विरुद्ध उनका विरोध भड़क उठा । फलतः पुरातन पंथी माता-पिता से उनकी नहीं पटी और तीन वर्ष बीतते-बीतते उन्हें घर छोड़ देना पड़ा । यह समय उन्होंने यात्रा करने में लगाया । वे तिब्बत भी गये और यहाँ लामाओं के धर्म का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त किया, जिससे उनकी विद्रोही भावना को बल मिला । कुछ समय बाद पिता-पुत्र में मेल हो गया, परन्तु यह मेल अधिक दिनों तक टिक नहीं सका और राममोहन फिर घर छोड़कर बनारस चले गए, जहाँ उन्होंने दस-ग्यारह वर्ष व्यतीत किये । इस बीच उनके पिता की मृत्यु हो गयी । इस उम्र में भी राममोहन ने अंग्रेजी भाषा सीखी, जिससे उन्हें बहुत लाभ हुआ । इसके द्वारा पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान तथा शासन व्यवस्था की जानकारी प्राप्त करना उनके लिए सुगम हो गया । उन्हें ईस्ट इंडिया कम्पनी में नौकरी भी मिल गयी ।

लगभग 50 वर्ष की उम्र में नौकरी से मुक्त होकर राममोहन राय कलकत्ता में रहने लगे । अब उन्होंने अपना सारा समय हिन्दू धर्म के सुधार में लगाया । 1815 ई० में उन्होंने कलकत्ता में 'आत्मीय सभा' की और 1822 ई० में युरेनियन कमिटी की स्थापना की । वे पक्के एकेश्वरवादी तथा मूर्त्तिपूजा और यज्ञ के प्रबल विरोधी थे । वे जाति व्यवस्था को गलत बताते थे और एक ब्रह्म की उपासना पर जोर देते थे । सती-प्रथा, बाल-विवाह, बहु-विवाह, बाल-हत्या जैसी कुरीतियों का उन्होंने प्रबल विरोध किया । सती-प्रथा को बन्द कराने के लिए उन्होंने किस प्रकार प्रयत्न किया और किस प्रकार लार्ड विलियम बेंटिक के समय में वे इसमें सफल हुए, यह पीछे कह आये हैं । राममोहन राय ने स्त्री-शिक्षा, विधवा-विवाह, विदेश यात्रा का समर्थन किया ।

उनके विचारों में, जैसा कि वे स्वयं कहते हैं कोई नवीनता नहीं थी । उनका कहना था कि उनका विचार हिन्दू धर्म के असली रूप पर आधारित है । उन्होंने अपने मत का प्रतिपादन वेदान्त तथा उपनिषदों का बंगला में अनुवाद तथा व्याख्या करके किया । अपने मत का व्यवस्थित ढंग से प्रचार करने के उद्देश्य से उन्होंने 1829 ई० में ब्रह्म समाज की स्थापना की, जिसकी पहली बैठक 20 अगस्त 1828 ई० को कलकत्ता में हुई ।

यद्यपि राममोहन राय को रूढ़िवादियों के जबर्दस्त विरोध का सामना करना पड़ा, परन्तु वे जरा भी विचलित नहीं हुए और आजीवन अपने विचार का प्रचार करते रहे । इसी उद्देश्य से वे इंगलैंड भी गये, जहाँ 1833 ई० में उनका देहान्त हुआ ।

धर्म सुधार के अतिरिक्त राममोहन राय ने शिक्षा प्रचार के लिए भी सतुल्य कार्य किया । वे मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम बनाना चाहते थे । 1817 ई० में उन्होंने हिन्दू कॉलेज तथा 1825 ई० में वेदान्त कॉलेज की स्थापना में योग दिया । वे स्त्रियों के अधिकारों के समर्थक थे तथा ईस्ट इण्डिया कम्पनी के व्यापारिक अधिकारों का अन्त चाहते थे । उन्होंने सरकारी नौकरियों के भारतीयकरण, वैधानिक रूप से आंदोलन का अधिकार, विचार, प्रकाशन की स्वतन्त्रता, कार्यपालिका और न्यायपालिका के पृथ्क्करण, जमींदारों के अत्याचारों का दमन तथा किसानों की दशा सुधार के लिए भी आंदोलन चलाए । जनमत के संगठन के लिए उन्होंने बंगला में 'संवाद कौमुदी' तथा फारसी में 'मशन उलअखबार' का संपादन किया । अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नों में भी उनकी रुचि थी । उन्होंने ब्रिटेन के संसदीय सुधार का समर्थन किया तथा चीन, ग्रीस, आयरलैंड आदि देशों की समस्याओं पर अपने विचार व्यक्त किए । उन्होंने नेपोलियन के अत्याचारों के विरुद्ध अपने विचार प्रकट किये । संक्षेप में सर विजेन्द्र शील के शब्दों में, "राममोहन राय व्यापक मानवता के विचार के जनक थे । वे सच्चे और विशुद्ध मानवतावादी थे और विश्व इतिहास में मानवता का जुनून, विकास के लिए उनका अथक प्रयत्न, मूर्तिपूजा और सती-प्रथा बन्द करने के लिए उनके सद्प्रयास तथा ईश्वर की महानता और मानव के

कल्याण की वृद्धि के लिए हर सम्भव उपाय का उनका सतत् हार्दिक समर्थन उनके देशवासियों की कृतज्ञ स्मृतियों में सदा बने रहेंगे।"

राममोहन राय की मृत्यु के बाद कुछ समय के लिए ब्रह्म समाज की स्थिति अत्यन्त दयनीय हो गयी। किन्तु जब 1845 ई० में देवेन्द्रनाथ ने इसकी सदस्यता ग्रहण की तो इसकी पुनः उन्नति शुरू हुई। पाँच वर्षों के भीतर देवेन्द्रनाथ ने इसमें नयी जान फूँक दी। राममोहन राय के जीवन काल में ब्रह्म समाज के विरुद्ध धर्मसभा की स्थापना की गयी थी, पर देवेन्द्रनाथ के सद्प्रयास से दोनों में मेल हो गया। उन्होंने स्त्री-शिक्षा, संस्कृत शिक्षा तथा समाज-सुधार के लिए भी प्रयत्न किया।

केशवचन्द्र सेन ब्रह्म समाज के दूसरे प्रमुख सदस्य थे जिन्होंने 1859 ई० में ब्रह्म विद्यालय तथा 1880 ई० में धार्मिक वाद-विवाद के लिए संगत सभा की स्थापना की। 1872 ई० में विवाह कानून पारित कराने में उनका प्रमुख हाथ था। इस कानून के द्वारा लड़के लड़कियों के विवाह की उम्र क्रमशः 18 और 14 स्थिर की गयी। किन्तु 1878 ई० में स्वयं सेन महोदय की 14 वर्षीया पुत्री का विवाह कूच बिहार के महाराजा के, जिसकी उम्र 15 वर्ष से भी कम थी, के साथ होने से उनके विरुद्ध प्रचण्ड विरोध उठ खड़ा हुआ और ब्रह्म समाज में फूट पड़ गयी। फिर भी इतना तो निर्विवाद है कि केशवचन्द्र सेन के समय ब्रह्म समाज की अच्छी उन्नति हुई और उत्तर प्रदेश, मद्रास और पंजाब में भी इसकी शाखाएँ कायम की गयीं। फिर भी, ब्रह्म समाज अखिल भारतीय संस्था का रूप ग्रहण नहीं कर सका।

प्रार्थना समाज—19वीं सदी में बंगाल के समान भारत के अन्य भागों में भी सुधार आंदोलन प्रारम्भ हुआ। 1849 ई० में महाराष्ट्र में परमहंस नामक धार्मिक संगठन की स्थापना की गयी, परन्तु इसका कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। डा० आत्माराम पांडुरंग के नेतृत्व में 1887 ई० में बम्बई में प्रार्थना समाज की स्थापना की गयी। विशुद्ध पूजा तथा सामाजिक सुधार इसका उद्देश्य था। उसने जाति-प्रथा को मानने से इंकार कर दिया तथा स्त्री-शिक्षा, विधवा विवाह और अन्तरजातीय विवाह को प्रोत्साहन दिया। अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसने कई अनाथालय, विधवाश्रम, रात्रि-पाठशाला की स्थापना की। सर आर० जी० भण्डारकर (1837-1927) तथा जस्टिस गोविन्द रानाडे (1842-1901) इस समाज के दो प्रमुख सदस्य थे। पश्चिमी भारत के जागरण में इन महापुरुषों का महत्वपूर्ण स्थान है। इसके तत्वावधान में 1844 ई० में 'डेकान एजुकेशन सोसाइटी' की स्थापना हुई, जिसका उद्देश्य भारतीयों में शिक्षा का प्रचार करना था। गोखले पहले इसी सोसाइटी के सदस्य थे। किन्तु तिलक से मतांतर होने पर उन्होंने 1905 ई० में सर्वेन्ट ऑफ इण्डिया सोसाइटी की स्थापना की, जिसने समाज-सुधार और शिक्षा के प्रसार के लिए स्तुत्य कार्य किया।

आर्य समाज—आर्य समाज की स्थापना स्वामी दयानन्द सरस्वती (1824-1884) ने 1875 ई० में काठियावाड़ में की। स्वामी जी का जन्म 1824 ई० में गुजरात के एक धनी परिवार में हुआ था। उन्होंने संस्कृत का गहन अध्ययन किया था, पर उन्हें अंग्रेजी का कोई ज्ञान नहीं था। वे एकमात्र सुधारक थे, जिन्होंने संस्कृत के अध्ययन के सहारे ही उस समय के समाज को परखा और प्रचलित कुप्रथाओं को दूर करने की चेष्टा की। 1874 ई० में उन्होंने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'सत्यार्थ प्रकाश' की रचना की जिसमें उन्होंने अपने सिद्धांतों का प्रतिपादन किया। स्वामी जी वेदों में विश्वास करते थे और पुराणों में वर्णित व्यवस्था को गलत मानते थे। अतः वे वेदों के आधार पर समाज का पुनर्गठन करना चाहते थे। स्वामी जी छुआछूत तथा बलि-प्रथा के भी विरोधी थे। एकेश्वरवादी और निराकार ब्रह्म का उपासक होने के कारण वे देवी-देवताओं की पूजा व्यर्थ समझते थे। उन्होंने श्राद्ध तर्पण आदि को भी गलत बताया। स्वामी जी बाल-विवाह के भी विरोधी थे तथा समाज में फैली कुरीतियों को दूर करना चाहते थे। वे हिन्दी समर्थक थे। उनका सत्यार्थ-प्रकाश हिन्दी में लिखा गया था। स्वामी जी स्वतन्त्रता के अभिलाषी थे और श्रेष्ठ विदेशी शासन को भी हेय दृष्टि से देखते थे। आर्य समाज का एक प्रसिद्ध कार्य गैर-हिन्दुओं और जाति च्युत लोगों को फिर से हिन्दू धर्म में दीक्षित करना है।

यों तो आर्य समाज की शाखाएँ सम्पूर्ण देश में फैली हुई हैं, पर पंजाब और उत्तर प्रदेश में इसे विशेष सफलता प्राप्त हुई है। इसका श्रेय इसके तीन प्रसिद्ध नेता-लाला हंसराज, पं० गुरुदत्त और लाजपत राय को है। इनके प्रयास से

ही स्वामी दयानन्द की स्मृति में एक विद्यालय की स्थापना हुई जो पीछे लाहौर के दयानन्द ऐंग्लो-वैदिक कॉलेज के नाम से विख्यात हुआ ।

1892 ई० में आर्य समाज में फूट पड़ गयी और वह दो दलों में बँट गया । एक दल लाला हंसराज के नेतृत्व में आधुनिक शिक्षा पद्धति का समर्थन करता था और दूसरा, जिसके नेता मुंशी राम (जो पीछे स्वामी श्रद्धानन्द के नाम से विख्यात हुए) थे, वैदिक पद्धति पर जोर देता था । इस दल ने प्राचीन युग के सन्यासियों के आदर्श का समर्थन किया और 1902 ई० में हरिद्वार के समीप एक गुरुकुल की स्थापना की जहाँ विद्यार्थी सात-आठ वर्ष की उम्र में भर्त्ती किये जाते थे और सोलह वर्ष की उम्र तक ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत करते थे ।

समाज सुधार के क्षेत्र में आर्य समाज ने प्रशंसनीय कार्य किया है । इसकी ओर से कई अनाथालय, विधवाश्रम, विद्यालय आदि चलाये जाते हैं ।

रामकृष्ण मिशन–रामकृष्ण मिशन की स्थापना स्वामी विवेकानन्द ने अपने गुरु रामकृष्ण परमहंस (1834-1886 ई०) की स्मृति में 1890 ई० में की थी । रामकृष्ण कलकत्ता के समीप दक्षिणेश्वर काली मन्दिर में पुजारी थे । वे उच्च आदर्श और शुद्ध आचरण के कारण बहुत प्रसिद्ध थे और उनके शिष्यों की संख्या बड़ी थी । उनके शिष्यों में नरेन्द्रनाथ दत्त (1863-1902 ई०) सबसे प्रसिद्ध थे जो पीछे विवेकानन्द के नाम से विख्यात हुए । गुरु की मृत्यु के ग्यारह वर्ष के बाद उन्होंने इस मिशन की स्थापना की जिसका प्रसार विदेशों में भी हुआ । मिशन का उद्देश्य दीन-दुखियों की सेवा करना है और इस दिशा में यह अनवरत काम कर रहा है । इसकी ओर से अनेक चिकित्सालय, पुस्तकालय, विद्यालय आदि चलाये जाते हैं । विवेकानन्द ने देश के बाहर भी अपने सिद्धांतों का प्रसार किया । 1893 ई० में शिकागों के विश्व धर्म-सम्मेलन में उन्होंने भाग लिया और भाषण देते हुए वेदांत को संसार का भव्य स्थापक तथा सर्वश्रेष्ठ धर्म बताया । 1900 ई० में उन्होंने पेरिस के द्वितीय विश्व-धर्म-सम्मेलन में भाग लिया । इसके दो वर्ष बाद इस महापुरुष का देहावसान हो गया ।

अलीगढ़ आंदोलन–मुसलमानों में आधुनिक शिक्षा के प्रसार और सामाजिक सुधार के लिए सबसे महत्वपूर्ण आंदोलन सर सैयद अहमद खाँ ने शुरू किया । सैयद अहमद खाँ (1817 ई०) का जन्म मुगल दरबार के एक सरदार परिवार में हुआ था । उन्होंने एक न्यायिक अफसर के रूप में ईस्ट इंडिया कम्पनी की नौकरी की और 1857 के विद्रोह के दौरान कम्पनी के प्रति वफादार बने रहे । ब्रिटिश शासक मुसलमानों को अपना दुश्मन और सबसे खतरनाक प्रतिद्वन्द्वी समझते थे । इसीलिए उन्होंने मुसलमानों के दमन की नीति अपनाई थी । सैयद अहमद खाँ मुसलमानों की दयनीय दशा से चिंतित थे । उन्होंने मुसलमानों की दशा को सुधारने का बीड़ा उठाया । उन्होंने मुसलमानों के प्रति अंग्रेजों की दुश्मनी को दूर करने के लिए अथक प्रयास किया । उन्होंने मुसलमानों को भी समझाया कि वे धार्मिक तथा शैक्षणिक सुधारों को अपनाएँ ।

धार्मिक तथा शैक्षणिक सुधारों की समस्या बहुत कठिन थी । उन्होंने मुसलमानों में इस्लाम की मूल मान्यताओं पर आधारित शुद्धता तथा सरलता के जीवन को अपनाने की अपील की । भारतीय मुसलमानों के पुनरुत्थान के लिए उन्होंने अंग्रेजी शिक्षा अपनाने पर जोर दिया । रूढ़िवादी मुसलमानों ने इसका विरोध किया मगर सैयद अहमद खाँ ने साहस और बुद्धिमानी से इन बाधाओं को पार किया । 1861 ई० में उन्होंने अनुवाद समिति की स्थापना की जिसे बाद में वैज्ञानिक समिति का नाम दिया गया । इस समिति का कार्यालय अलीगढ़ में था । इसने विज्ञान तथा अन्य विषयों की अंग्रेजी पुस्तकों के उर्दू अनुवाद प्रकाशित किए और समाज सुधार से सम्बन्धित उदार विचारों के प्रसार के लिए एक अंग्रेजी-उर्दू पत्रिका भी निकाली । उनकी सबसे बड़ी उपलब्धि 1875 ई० में अलीगढ़ में 'मोहम्मडन एंग्लो ओरिएन्टल कॉलेज' की स्थापना की । आगे चलकर यह कॉलेज भारतीय मुसलमानों का सबसे महत्वपूर्ण शिक्षा संस्थान बन गया । यहाँ अंग्रेजी माध्यम से कला तथा विज्ञान के विषयों की पढ़ाई का प्रबन्ध हुआ । यहाँ के कई शिक्षक इंगलैंड से आये थे । सारे देश के प्रमुख मुसलमानों ने इस कॉलेज को अपना सहयोग दिया । अंग्रेजों ने इस कॉलेज में दिलचस्पी ली और इसके विकास में हर प्रकार से सहयोग किया ।

प्रभाव के रूप में हम पाते हैं कि घिसी-पिटी प्रथाओं के विरुद्ध शिक्षित वर्ग ने आवाज उठायी । कहानी, उपन्यास, नाटक, काव्य, पत्र-पत्रिका आदि ने महत्वपूर्ण योगदान दिया । इस आधार पर कह सकते हैं कि यह धर्म सुधार आंदोलन था जो 20वीं सदी के चौथे दशक तक चलता रहा । स्त्रियों की स्थिति काफी खराब थी । गरीब स्त्रियों को तो कुछ स्वतन्त्रता मिली थी क्योंकि इनको खेतों में काम करना पड़ता था और पति के मरने पर दूसरी शादी कर सकती थी, लेकिन धनी घर की औरतें तो न दूसरी शादी कर सकती थीं और न ही उन्हें घर से बाहर निकलने की अनुमति थी । बाल विवाह के कारण स्त्रियों पर ज्यादा खराब असर पड़ता था । पति के मरने पर उसे जिन्दगी भर विधवा रहना पड़ता था । गरीब मुसलमान भी तीन चार शादी करता था, पर स्वाभाविक रूप से खर्च चलाने में असमर्थ था । इनके बीच शिक्षा का कोई प्रश्न नहीं उठता था लेकिन 19वीं सदी के इस आंदोलन ने नारी समस्या को सुलझाने के लिए कुछ धनी महिलाओं को आगे लाया । पुरुषों ने भी नारियों की स्थिति में सुधार लाना चाहा । स्त्रियों ने स्वतंत्रता संग्राम में भाग लिया और सरोजनी नायडू राष्ट्रीय कांग्रेस की अध्यक्षा बनीं । स्त्रियाँ स्थानीय संस्थानों की सदस्य भी बनीं । 1927 में All India Womens' Association के स्थापना हुई । असन्तुष्ट पत्नी अब पति को स्वयं तलाक दे सकती थी । उन्हें संवैधानिक मान्यता भी मिली ।

अछूतों की स्थिति काफी खराब थी, सार्वजनिक कुआँ, तालाब एवं अन्य स्थानों पर ये नहीं जा सकते थे । गाय, भैंस या अन्य पशु मन्दिर में प्रवेश कर सकते थे लेकिन अछूत नहीं । अन्य हिन्दू वर्गों के बीच शादी व खान-पान के दृष्टिकोण से आपसी भेद-भाव था । इस भेद-भाव की समाप्ति करने में कल-कारखाने, रेलवे, बस, शहरीकरण आदि काफी सहायक सिद्ध हुए । शहरों की व्यस्त गतिशील दुनिया में जाति और आर्थिक-स्तर को पूछने की फुर्सत किसी को नहीं थी । धन कमाने के लिए ब्राह्मण शहर में जूता बेचने का काम करने लगा । विभिन्न जाति के लोग सेना में भरती हुए । अनेक लोग उच्च अधिकारी और डाक्टर आदि बने । बाढ़ से पीड़ित क्षेत्रों में लोगों को नाव से हटाकर सरकार एक ही स्थान पर रखकर एक साथ उन्हें खाना खिलाती थी । भूख से व्याकुल ब्राह्मण को बगल में बैठे हुए अछूत से पूछने का समय कहाँ था कि वह किस जाति का है । अंग्रेजों ने बिना छूत-अछूत का भेद-भाव किए निम्न जाति के योग्य लोगों को नौकरी दी और निम्न जाति या व्यक्ति अब निम्न नहीं रह गया ।

सुमित सरकार, विपिनचन्द्र, सव्यसाची भट्टाचार्य, एस० गोपाल आदि विद्वानों ने बतलाया कि इस आंदोलन का विशेष ध्यान शहरों में रहने वाले मध्यम तथा उच्च वर्गों के लोगों की आवश्यकता तक सीमित रहा । गाँव या शहर का गरीब अभी भी अपनी जिन्दगी पुराने तरीकों के सहारे काट रहा था । हिन्दुओं, मुसलमानों, सिक्खों तथा पारसियों के बीच इस आंदोलन के कारण विभाजन रेखा बढ़ गयी । उच्च तथा निम्न जातियों के हिन्दुओं के बीच खाई बढ़ी । कला, साहित्य, संगीत, विज्ञान और तकनीक पर विशेष प्रकाश नहीं डाला गया, जिससे गरीब वर्गों पर अच्छा प्रभाव पड़ सकता था ।

❋❋❋

पाठ–2A

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना

1885 ई० में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना वास्तव में अखिल भारतीय स्तर पर भारतीय राष्ट्रवाद की पहली सुनियोजित अभिव्यक्ति थी । वैसे भारत में समाज सुधार एवं धर्म सुधार आंदोलनों ने राष्ट्रीय चेतना जगाने में अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभायी । चेतना जगाने में दूसरे महत्वपूर्ण कारणों की भी अनदेखी नहीं की जा सकती । इस चेतना की अभिव्यक्ति वैसे तो 1857 ई० के विद्रोह में भी देखी जा सकती है । 1885 ई० तक राष्ट्रीयता के तत्व और

भी मजबूत हो चुके थे । अब अनेक भारतीय राष्ट्रवादी कार्यकर्त्ता एक अखिल भारतीय संगठन बनाने की योजना बना रहे थे । यद्यपि इस विचार को मूर्त्त रूप देने का श्रेय एक सेवानिवृत्त अंग्रेज सरकारी अफसर ए० ओ० ह्यूम को जाता है ।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के पूर्व ही अपने निजी स्वार्थों और हितों की रक्षा के लिए कुछ वर्ग विशेष अपने संगठन बनाने लग गये थे । 1838 ई० में जमींदारों ने अपने हितों की रक्षा के लिए एक संगठन बनाया जिसका नाम रखा गया–"लैंडहोल्डर्स सोसाइटी" । आधुनिक भारत में यह संस्था पहली सार्वजनिक संस्था कही जा सकती है । इसका उद्देश्य बंगाल, बिहार और उड़ीसा के जमींदार वर्ग के हितों की रक्षा करना था ।

अप्रैल 1843 ई० में एक अन्य राजनीतिक सभा की स्थापना हुई जिसका नाम "बंगाल ब्रिटिश इण्डिया सोसायटी" रखा गया । इस संस्था का उद्देश्य अंग्रेजों के अधीन भारत के लोगों की वास्तविक अवस्था के विषय में जानकारी प्राप्त करना और उसका विस्तार करना था । साथ ही ऐसे शांतिमय और कानूनी साधनों का प्रयोग करना था, जिससे जनता की उन्नति हो, उसके न्यायोचित अधिकारों का विस्तार हो और सभी वर्ग के लोगों के हितों की उन्नति हो ।

1851 ई० में दोनों संस्थाओं का विलयन हो गया और 1852 ई० में 'ब्रिटिश इण्डिया एसोसियेशन' की स्थापना हुई । वैसे इस समय सभा के मुखिया भी भूमिपति ही थे और इस संस्था का मुख्य उद्देश्य भी उन्हीं के हितों की रक्षा करना था । एक उदारवादी प्रयत्न इस संस्था ने अवश्य किया कि 1920 के चार्टर के नवीनीकरण के समय ब्रिटिश संसद को एक प्रार्थना पत्र भेजा जिसमें लोकप्रिय प्रकार की विधान सभा, न्यायिक और दण्ड नायक कार्य अलग कर दिए जाने की, बड़े अधिकारियों के वेतन कम करने की तथा नमक, आबकारी और स्टाम्प कर इत्यादि समाप्त कर दिए जाने की माँग की गयी थी । इस प्रार्थना का कुछ प्रभाव भी अवश्य हुआ ।

1875 ई० में बाबू शिशिर कुमार घोष ने 'इण्डिया लीग' की स्थापना की जिसका उद्देश्य लोगों में राष्ट्रवाद की भावना को जगाना और राजनीतिक शिक्षा को प्रोत्साहित करना था । 1876 ई० में आनन्द मोहन बसु और सुरेन्द्र नाथ बनर्जी ने 'इण्डियन एसोसिएशन' की स्थापना की । इस संस्था का उद्देश्य मध्यम वर्ग के साथ-साथ सर्वसाधारण को भी इसमें लाना था ।

इसी बीच लार्ड लिटन की दमनात्मक नीतियों के कारण राजनीतिक गतिविधियाँ और अधिक तेज हो गयीं । इण्डियन सिविल सर्विस में प्रवेश की आयु 19 वर्ष कर दी गयी । चूँकि इसकी परीक्षा लंदन में हुआ करती थी, अतः क्रम आयु के युवकों के लिए लंदन जाकर परीक्षा देना असम्भव हो गया । इण्डियन एसोसिएशन ने इस नीति के विरोध में आन्दोलन किया । इसका नेतृत्व सुरेन्द्र नाथ बनर्जी ने किया । उन्होंने तीव्र गति से बनारस, इलाहाबाद, कानपुर, लखनऊ, अलीगढ़, दिल्ली, मेरठ, अमृतसर, लाहौर इत्यादि नगरों में इण्डियन एसोसिएशन, कलकत्ता की सहायक संस्थाएँ स्थापित कीं ।

बम्बई प्रेसीडेंसी में ब्रिटिश इण्डियन एसोसिएशन के नमूने पर 'बम्बई एसोसिएशन' बनायी गयी । इसका उद्देश्य सरकार को समय-समय पर ज्ञापन देना था ताकि बुराइयों को दूर किया जा सके । लिटन की प्रतिक्रियावादी नीतियों और इल्बर्ट बिल पर हुए विवाद ने बम्बई के राजनीतिक क्षेत्र को काफी प्रभावित किया और मेहता, तेलागू और तैयबजी के प्रयासों से 1885 ई० में बम्बई 'प्रेसीडेंसी एसोसिएशन' बनायी गयी । 1867 में 'पूना सार्वजनिक सभा' बनायी गयी । इसके संस्थापक राणाडे थे । इस संस्था का मुख्य उद्देश्य जनता और सरकार के बीच एक सेतु के रूप में काम करना था ।

मद्रास प्रेसीडेंसी में राजनीतिक संस्थाएँ स्थापित की गयीं । ब्रिटिश इण्डियन एसोसिएशन की शाखा के रूप में "मद्रास नेटिव एसोसिएशन" बनायी गयी । मई 1837 ई० में मद्रास महाजन सभा की स्थापना हुई जिसका उद्देश्य स्थानीय संगठनों के कार्यों में समन्वय स्थापित करना था ।

इस प्रकार भारतीय राष्ट्रवादियों के प्रयत्नों के फलस्वरूप एक अखिल भारतीय राजनीतिक संगठन के निर्माण के लिए पृष्ठभूमि का निर्माण हो चुका था । राष्ट्रवादियों ने विदेशी शासन और शोषण को अपना सामूहिक शत्रु मान लिया था और ये राजनीतिक तौर पर एकजुट होने की आवश्यकता महसूस कर रहे थे । तत्कालीन संगठनों का दायरा और

काम संकुचित था । फलस्वरूप इन संस्थाओं को एक अखिल भारतीय संस्था बनने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हो सका । जागरूक भारतीयों के दिलों में एक अखिल भारतीय सम्मेलन की भावना बहुत दिनों से काम कर रही थी । अत: दिसम्बर 1883 में इंडियन एसोसिएशन के प्रयासों से कलकत्ता में 'इण्डियन नेशनल कांफ्रेंस' का पहला सम्मेलन बुलाया गया । इस सम्मेलन में विभिन्न क्षेत्रों से आए हुए लोगों ने भाग लिया । इस सम्मेलन के प्रथम प्रस्ताव द्वारा माँग की गयी कि भारत में भी सिविल परीक्षा ली जाय, ठीक उसी समय जब लन्दन में परीक्षा ली जाती है और इसमें बैठने की आयु पहले की तरह 21 वर्ष की जाय । दूसरे प्रस्ताव में राष्ट्रीय कोष के संग्रह पर बल दिया गया । तीसरे प्रस्ताव में भारत में प्रतिनिधि विधान सभा की माँग की गयी । चौथे में 'असम एक्ट' रद्द करने और पाँचवें में इल्बर्ट बिल समझौते पर खेद प्रकट किया गया था । यद्यपि यह सम्मेलन पूर्णतया सफल न रहा, फिर भी इस सम्मेलन का अपना महत्त्व था, क्योंकि सभी राष्ट्रीय नेताओं को एक मंच पर लाने और संयुक्त अखिल भारतीय संगठन की स्थापना की तरफ यह पहला कदम था।

दूसरी इण्डियन नेशनल काँफ्रेंस दिसम्बर 1885 ई० में कलकत्ते में हुई । लेकिन जब कलकत्ता की नेशनल काँग्रेस की तैयारी पूरी हो गयी तब ह्यूम के मित्र व्योमेश चन्द्र बनर्जी से अपनी कांफ्रेंस स्थगित करने और बम्बई की कांफ्रेंस में शामिल होने को कहा । बाद में इसी बम्बई कांफ्रेंस का नाम उन्होंने "इण्डियन नेशनल कांफ्रेंस" रखा जिसकी बैठक 28-30 दिसम्बर को हुई ।

भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस के जन्मदाता–

आमतौर पर भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस की स्थापना का श्रेय एक अवकाश प्राप्त ब्रिटिश आई० सी० एस० अधिकारी ए० ओ० ह्यूम को दिया जाता है । उन्हें 'काँग्रेस का पिता' भी कहा जाता है । ह्यूम उदारवादी थे और थियोसोफिकल सोसाइटी से भी प्रभावित थे । भारत के साथ उनकी गहरी सहानुभूति थी । इसके साथ ही वह एक अनुभवी और दूरदर्शी व्यक्ति भी थे । ह्यूम अच्छी तरह जान रहे थे कि भारत में ब्रिटिश शासन के विरुद्ध घोर असंतोष है और एक भयंकर विस्फोट की सम्भावना से इन्कार नहीं किया जा सकता । अत: ब्रिटिश भारत की सुरक्षा के लिए एक अखिल भारतीय राजनीतिक संगठन की उन्होंने आवश्यकता महसूस की । ह्यूम ने 1 मार्च 1883 को कलकत्ता विश्वविद्यालय के स्नातकों के नाम एक खुला पत्र लिखा जिसमें उन्होंने शिक्षित नवयुवकों को संगठित होकर मातृभूमि के लिए कल्याण कार्य करने की अपील की । पत्र में यह लिखा गया था कि "यदि पचास शिक्षित नवयुवक ही स्वार्थ त्याग कर देश की स्वतन्त्रता के लिए संगठित होकर प्रयत्न करें तो आगे कार्य सरल हो सकता है ।" ह्यूम के पत्र का भारतीयों पर गहरा प्रभाव पड़ा और भारतीय नोताओं से विचार-विमर्श के पश्चात् ह्यूम ने 'इण्डियन नेशनल यूनियन' की स्थापना की।

ह्यूम ने अपनी योजना तत्कालीन वायसराय लॉर्ड डफरिन के सामने रखी । ह्यूम इस संगठन के द्वारा राजनीतिक विषयों पर वाद-विवाद नहीं चाहते थे । मगर डफरिन ने उन्हें सलाह दीं कि काँग्रेस को इंगलैंड के विरोधी दल की तरह राजनीतिक संगठन बनने देना चाहिए । डफरिन का आशीर्वाद प्राप्त करके तथा इंगलैंड के भारतीय नेताओं से विचार-विमर्श करके ए० ओ० ह्यूम ने भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस की स्थापना करने का निश्चय कर लिया । उन्होंने पूना में काँग्रेस का प्रथम अधिवेशन 25 से 28 दिसम्बर, 1885 को करने का निर्णय लिया ।

वैसे डब्लू० सी० बनर्जी यह मानते हैं कि लार्ड डफरिन के द्वारा इंडियन नेशनल काँग्रेस की स्थापना की बात पहले सोची गयी थी और अपने विचारों को व्यावहारिक रूप देने के लिए उन्होंने ह्यूम को प्रभावित किया था । डफरिन भारत में ऐसी संस्था को जन्म देना चाहते थे जो भारतीय जनता की वास्तविक समस्याओं को सरकार के सामने पेश कर सके और विस्फोटक स्थिति से ब्रिटिश भारत की रक्षा की जा सके । ह्यूम और डफरिन में शिमला में भेंट हुई थी और डफरिन ने ह्यूम की योजना को पुन: स्वीकार करने में अपनी सहमति प्रकट की थी । वास्तव में डफरिन और ह्यूम दोनों ही जागरूक साम्राज्यवादी थे । शासक और शासित के बीच बढ़ती हुई खाई से दोनों ही चिन्तित थे, अत: सरकारी और गैर सरकारी व्यक्तियों का राजनीतिक संगठन राष्ट्रीय स्तर पर कायम करना चाहते थे । इस दृष्टि से भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस की स्थापना में डफरिन और ह्यूम दोनों का महत्वपूर्ण योगदान माना जाता है ।

काँग्रेस के उद्देश्य–

काँग्रेस की स्थापना के उद्देश्यों के प्रश्न को लेकर विद्वानों में मतभेद है । कुछ विद्वानों के अनुसार काँग्रेस की स्थापना ब्रिटिश साम्राज्य के हितों की रक्षा के लिए की गयी थी । दूसरी ओर कुछ विद्वानों का मत है कि भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस को भारतीय राष्ट्रीयता के माध्यम के रूप में स्थापित किया गया । काँग्रेस के वास्तविक उद्देश्य क्या थे ? इस प्रश्न का उत्तर जानने के लिए हमें दोनों ही दृष्टिकोणों का निष्पक्ष अध्ययन करना होगा ।

रक्षा नली के रूप में काँग्रेस का जन्म–

लाला लाजपत राय के विचार में "काँग्रेस की स्थापना का मुख्य उद्देश्य अंग्रेजी साम्राज्य को खतरे से बचाना था, भारत की राजनीतिक स्वतन्त्रता के लिए प्रयत्न करना नहीं । ब्रिटिश साम्राज्य का हित प्रमुख था, भारत का गौण, और यह कोई नहीं कह सकता था कि काँग्रेस ने इस उद्देश्य का पालन नहीं किया ।" काँग्रेस की स्थापना के समय स्वयं ह्यूम महोदय ने अपने एक मित्र सर ऑकलैंड कौलविन को बताया था "उनकी यह योजना अपने ही कर्मों के फलस्वरूप उत्पन्न हुई जो एक प्रबल और बढ़ती शक्ति के निष्कासन के लिए रक्षा-नली के उद्देश्य से बनायी गयी थी ।" डा० नन्दलाल चटर्जी का विचार है कि ह्यूम साहब ने काँग्रेस की स्थापना का प्रस्ताव तब रखा जब ब्रिटिश भारत पर रूसी आक्रमण की सम्भावना बनी हुई थी । यही कारण है कि जब रूसी आक्रमण का भय समाप्त हो गया तो भारत सरकार का व्यवहार काँग्रेस के प्रति एकाएक बदल गया । सर विलियम वेडरबर्न और रजनी पामदत्त के अनुसार भी काँग्रेस की स्थापना के पीछे मुख्य उद्देश्य भारत का राष्ट्रीय उत्साह भंग करना था ।

इसमें कोई संदेह नहीं कि ह्यूम साहब को भारतीयों के साथ सहानुभूति थी फिर भी वे एक अंग्रेज थे और भारत में ब्रिटिश साम्राज्य को अमर देखना चाहते थे । तत्कालीन भारत की परिस्थितियों में उन्हें रक्त-रंजित क्रांति का आभास हो रहा था । भारतीय जनता में विद्यमान सम्भावित विस्फोटक और क्रांतिकारी भावनाओं को वैधानिक प्रवाह में बदलने के उद्देश्य से ही उन्होंने काँग्रेस की स्थापना में योगदान दिया था । इससे प्रमाणित होता है कि ह्यूम साहब ने एक सुरक्षा नली के रूप में काँग्रेस की स्थापना की थी ।

भारतीय राष्ट्रवाद के माध्यम के रूप में–

कुछ विद्वानों के अनुसार काँग्रेस की स्थापना का मुख्य उद्देश्य भारतीय राष्ट्रवाद को एक देशव्यापी संगठन के रूप में व्यक्त करना था । अब यह प्रश्न उठना तो सहज ही है कि आखिर भारतीय राजनीतिज्ञों ने ह्यूम साहब की योजना क्यों स्वीकार की ? इन भारतीय राजनीतिज्ञों की देश-भक्ति पर ऊँगली उठाना भी महापाप होगा । इसलिए निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए ही वे भारतीय राजनीतिज्ञ ह्यूम साहब के साथ सम्मिलित हुए होंगे । सम्भवत: इनकी धारणा थी कि वैधानिक उपायों के द्वारा भारतीय अपने अधिकार प्राप्त कर सकेंगे और यह भी कि अंग्रेजों को लोकतांत्रिक संस्थाओं से प्रेम है और वे आसानी के साथ अंग्रेजों से अपनी बात मनवाने में सफल होंगे । स्वयं लाला लाजपत राय ने यह माना है कि "ह्यूम भारत के लिए ब्रिटिश शासन की छत्र-छाया में स्वतन्त्रता के समर्थक थे ।" "ह्यूम बहुत उच्च हृदय वाले सच्चे व्यक्ति थे । उन्हें स्वतन्त्रता से बड़ा प्रेम था और भारत की निर्धनता और दुर्दशा देखकर उन्हें बड़ा दु:ख था ।" श्रीमती एनीबेसेंट का भी यही मत है । डॉ० जकारिया भी उसी मत के समर्थक हैं ।

काँग्रेस के प्रथम अधिवेशन में बताये गए उद्देश्य–

काँग्रेस के प्रथम अधिवेशन में इसके प्रथम अध्यक्ष श्री व्योमेश चन्द्र बनर्जी ने काँग्रेस की स्थापना के निम्नलिखित उद्देश्य बताये–

(क) साम्राज्य के भिन्न-भिन्न भागों में देशहित के लिए लगन से काम करने वालों की आपस में घनिष्टता और मित्रता बढ़ाना,

(ख) समस्त देश-प्रेमियों के अन्दर प्रत्यक्ष मैत्रीपूर्ण व्यवहार के द्वारा वंश, धर्म और जाति से सम्बद्ध तमाम पूर्व दूषित संस्कार मिटाना और राष्ट्रीय एकता की भावना का पोषण और परिवर्द्धन ।

(ग) महत्त्वपूर्ण और आवश्यक सामाजिक प्रश्नों पर भारत के शिक्षित लोगों में अच्छी तरह चर्चा होने के बाद जो परिपक्व सम्मतियाँ प्राप्त हों उनका प्रामाणिक संग्रह करना और

(घ) उन तरीकों और दिशाओं का निर्णय जिनके द्वारा भारत के राजनीतिक देशहित में कार्य करें ।

कुल मिलाकर हम कह सकते हैं कि काँग्रेस की स्थापना का मुख्य उद्देश्य ब्रिटिश साम्राज्य की सुरक्षा था । 1857 के विद्रोह के बाद एक बार फिर विद्रोह की आग अन्दर-ही-अन्दर सुलग रही थी । बढ़ती हुई गरीबी ने असंतोष और बढ़ाया । ह्यूम जिस समय सरकारी सेवा में थे, उसी समय उन्हें ज्ञात हुआ था कि देश भर में षडयंत्रकारी गुप्त संगठन तेजी से बढ़ते जा रहे हैं । ह्यूम साहब को यह विश्वास था कि काँग्रेस जैसी संस्था क्रांतिकारी असंतोष के विरुद्ध रक्षात्मक सिद्ध होगी और वास्तव में ऐसा ही हुआ भी । इसके साथ ही हमें यह भी स्वीकार करना होगा कि काँग्रेस की स्थापना में जिन भारतीय राजनीतिज्ञों ने सहयोग दिया था वह सच्चे राष्ट्रभक्त थे और किसी भी मायने में ब्रिटिश सरकार के अनुगामी नहीं थे । उन्होंने ह्यूम साहब का साथ इसलिए दिया कि वे अपनी प्रारंभिक राजनीतिक गतिविधियों के लिए सरकार के संदेह का पात्र नहीं बनना चाहते थे । अगर ह्यूम ने काँग्रेस को 'सुरक्षा नली' के रूप में इस्तेमान किया तो प्रारम्भिक काँग्रेस के नेता इसे 'तड़ितचालक' के रूप में इस्तेमाल करना चाहते थे ।

आगे चलकर 1913 में गोपाल कृष्ण गोखले ने कहा–

कोई भी भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस की स्थापना नहीं कर सकता था । यदि कोई भारतीय इस प्रकार का अखिल भारतीय आंदोलन प्रारम्भ करने के लिए आगे आता भी तो सरकारी अधिकारी उसे अस्तित्व में ही नहीं आने देते । यदि काँग्रेस का संस्थापक एक महान् तथा भूतपूर्व अंग्रेज सरकारी अधिकारी न होता तो उन दिनों के राजनैतिक आंदोलनों के सन्देहास्पद वातावरण में अधिकारी इस आंदोलन को कुचलने का कोई-न-कोई रास्ता निकाल ही लेते ।

इस तरह यह स्पष्ट हो जाता है कि काँग्रेस की स्थापना, 1885 के पहले कुछ वर्षों से देश में चल रहे राजनीतिक कार्य-कलाप और गतिविधियों की स्वाभाविक परिणति थी । उस समय तक देश की राजननीतिक स्थिति ऐसी बन गयी थी कि यह जरूरी हो गया था कि कुछ बुनियादी काम और लक्ष्य तय किए जायें और उनके लिए संघर्ष किया जाय । इन लक्ष्यों को हासिल करने के लिए यह जरूरी था कि देश के राजनीतिक कार्यकर्त्ता एक मंच पर आयें । अखिल भारतीय आधार पर गठित कोई एक संगठन ही ऐसा मंच प्रदान कर सकता था । ये सभी लक्ष्य एक-दूसरे से जुड़े थे और एक-दूसरे पर आधारित थे और इन्हें तभी हासिल किया जा सकता था जब राष्ट्रीय स्तर पर कोई कोशिश शुरू की जाती । 28 दिसम्बर 1885 को बम्बई में हुए सम्मेलन में जिन लोगों ने हिस्सा लिया था, उनके लिए ये बुनियादी लक्ष्य ही सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण थे और वे यह आशा लेकर ही वहाँ गये थे कि इन लक्ष्यों को हासिल करने की प्रक्रिया की शुरुआत बम्बई में होगी । काँग्रेस की सफलता या विफलता और बाद के वर्षों में उसके चरित्र का निर्धारण, बजाय इसके कि उसकी स्थापना किन लोगों ने की, इससे किया जाना चाहिए कि अपनी स्थापना के शुरूआती वर्षों में इन लक्ष्यों को हासिल करने में वह कहाँ तक सफल रही ।

काँग्रेस का प्रथम अधिवेशन–

काँग्रेस की स्थापना का मुख्य श्रेय अवकाश प्राप्त आइ० सी० एस० अफसर एलन ऑक्टवियस ह्यूम को दिया जाता है । उन्हें राष्ट्रीय काँग्रेस का 'पिता' भी कहा जाता है । ह्यूम एक उदारवादी अंग्रेज थे । भारत और भारतवासियों के साथ उनकी गहरी साहनुभूति थी । साथ ही ह्यूम महोदय एक अनुभवी और दूरीदर्शी व्यक्ति भी थे । विभिन्न कारणों से वशीभूत होकर वह एक अखिल भारतीय संगठन की स्थापना करना चाहते थे । अपने उद्देश्यों की पूर्त्ति के लिए उन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय के स्नातकों के नाम एक खुला पत्र लिखा जो बड़ा ही हृदय-स्पर्शी था । इस पत्र में ह्यूम महोदय ने देश के शिक्षित नवयुवकों को मातृभूमि की उन्नति के लिए प्रयत्न करने की अपील की ताकि 'भारतीय राष्ट्र का बौद्धिक, सामाजिक और राजनीतिक पुनर्जागरण हो सके और उसके लिए अनुशासित और सुसज्जित सेना तैयार हो सके ।' उन्होंने आगे कहा कि "यदि पचास शिक्षित नवयुवक ही स्वार्थ त्याग कर देश की स्वतन्त्रता के लिए संगठित

होकर प्रयत्न करें तो आगे का कार्य अत्यन्त सरल हो सकता है ।" ह्यूम साहब के इस पत्र का शिक्षित भारतीयों पर बड़ा गहरा असर पड़ा ।

तत्कालीन वायसराय लार्ड डफरिन का आशीर्वाद भी उन्होंने प्राप्त कर लिया और फिर वह इंगलैंड गये जहाँ उन्होंने भारतीय मामलों में दिलचस्पी रखने वाले प्रमुख व्यक्तियों से इस प्रस्तावित संगठन की योजना के संबंध में विचार-विमर्श किया । भारत लौटने के पूर्व उन्होंने इन्डियन पार्लियामेंटरी कमिटी का संगठन किया जिसका उद्देश्य पार्लियामेंट के सदस्यों से यह प्रतिज्ञा करवाना था कि वे भारत के मामलों में दिलचस्पी लेंगे ।

मार्च 1885 में ह्यूम साहब इंगलैंड से भारत लौटे और तब यह निश्चय किया गया कि आगामी बड़े दिन की छुट्टियों में देश के सभी भागों के प्रतिनिधियों की एक सभा पूना में बुलायी जाय । इस आशय का एक परिपत्र जारी किया गया जिसका मुख्य अंश इस प्रकार था–

"23 से 31 दिसम्बर, 1885 तक पूना में इण्डियन नेशनल यूनियन की एक सभा होगी । इसमें बंगाल, बम्बई और मद्रास प्रांतों के अंगरेजी जानने वाले प्रमुख प्रतिनिधि सम्मिलित होंगे । इस सभा के उद्देश्य होंगे–(क) राष्ट्र की प्रगति के लिए जी-जान से लगे लोगों का एक-दूसरे से परिचय, (ख) इस वर्ष के लिए कौन-कौन से कार्य किए जाएँ, इनकी चर्चा और निर्णय लेना ।"

काँग्रेस के प्रथम अधिवेशन के संबंध में यह तय किया गया था कि पूना में 2 दिसम्बर, 1885 तक काँग्रेस का अधिवेशन हो । लेकिन पूना में महामारी शुरू होने के कारण उक्त निश्चय में परिवर्तन करना पड़ा । पुनः तय किया गया कि काँग्रेस का प्रथम अधिवेशन बम्बई में हो । 28 दिसम्बर, 1885 को दिन के 12 बजे गोकुल दास तेजपाल संस्कृत कॉलेज के भवन में काँग्रेस का अधिवेशन हुआ और इस प्रकार भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस का जन्म हुआ । इस अधिवेशन में देश के विभिन्न भागों से 72 प्रतिनिधियों ने भाग लिया । इस अधिवेशन में भाग लेने वाले नेताओं में प्रमुख थे–ए० ओ० ह्यूम, महादेव गोविन्द राणाडे, उमेश चन्द्र बनर्जी, दादा भाई नौरोजी, पी० नायडू, काशीदास त्रयम्बक तैलंग आदि । काँग्रेस के इस प्रथम अधिवेशन का सभापतित्व किया श्री व्योमेश चन्द्र बनर्जी ने जो एक भारतीय ईसाई थे । उमेश चन्द्र बनर्जी के अनुसार "भारत में ऐसा महत्वपूर्ण और व्यापक प्रतिनिधित्वपूर्ण सम्मेलन नहीं हुआ था ।" इस प्रकार भारत की उस महान राष्ट्रीय राजनीतिक संस्था का जन्म हुआ जिसके नेतृत्व में भारत की आजादी की लड़ाई लड़ी गयी ।

काँग्रेस की स्थापना भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के प्रमुख प्रतिनिधि वायसराय की स्वीकृति और आशीर्वाद से हुई थी । निर्णय यह हुआ कि सराकारी अफसर इसके कार्यक्रम में भाग नहीं लेंगे, परन्तु यदि वे चाहें तो निरीक्षक के तौर पर इसके अधिवेशन में उपस्थित हो सकते हैं ।

प्रथम अधिवेशन के प्रस्ताव–

प्रारम्भिक दिनों में राष्ट्रीय काँग्रेस के उद्देश्य बहुत ही नम्र थे । भारतीय काँग्रेस के माध्यम से ब्रिटिश सरकार को अपनी कठिनाइयों से अवगत कराना चाहते थे तथा उन कठिनाइयों का निदान चाहते थे । काँग्रेस के प्रथम अधिवेशन में निम्नलिखित प्रस्ताव पारित किये गये–

(क) भारतीय प्रशासन की जाँच करने के लिए रॉयल कमीशन की नियुक्ति की जाए ।

(ख) भारत और बर्मा को न मिलाया जाय ।

(ग) सेना के संगठन में परिवर्त्तन तथा सैनिक व्यय में कमी की जाय ।

(घ) भारत सचिव का पद और इंडिया काउंसिल भंग कर दिया जाय ।

(ङ) भारतीय लोक सेवा की परीक्षा भारत में हो तथा विद्यार्थियों की आयु-सीमा बढ़ा दी जाय ।

(च) केन्द्रीय तथा प्रांतीय व्यवस्थापिका सभाओं में सुधार किया जाय ।

(छ) भारतीयों को उच्च सरकारी पद प्रदान किया जाय ।

पारित प्रस्तावों को राजनीतिक सभा के पास भेजने तथा राष्ट्रीय काँग्रेस का दूसरा अधिवेशन कलकत्ता में करने का निर्णय लिया गया । अधिवेशन की समाप्ति महारानी विक्टोरिया की जयकार के साथ हुई । प्रारम्भ से लेकर अन्त तक अधिवेशन की कार्यवाही पर ह्यूम की छाप स्पष्ट रूप से दिखायी पड़ती है और वे राष्ट्रीय काँग्रेस के प्रथम सचिव भी निर्वाचित हुए ।

1885 ई० में भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस की स्थापना अत्यन्त महत्वपूर्ण और युगान्तरकारी घटना थी । वास्तविकता यही है कि भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस की स्थापना से ही शुरू होता है । अपने जन्म के दिन से ही भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस ने समस्त भारतीयों के हित साधन को अपना उद्देश्य बना लिया । इसमें कोई शक की गुंजाइश नहीं कि काँग्रेस के प्रथम अधिवेशन ने परम राजभक्ति का परिचय दिया । ह्यूम को कितनी सफलता मिली, यह अधिवेशन समाप्त होने के समय की एक घटना से स्पष्ट हो जाता है । काँगेस के इस प्रथम अधिवेशन की रिपोर्ट में इस घटना का वर्णन निम्न शब्दों में किया गया है । ह्यूम महोदय ने अपने प्रति प्रकट किये गये सम्मान के लिए धन्यवाद देने के बाद कहा–"धन्यबाद ज्ञापन का काम चूँकि मुझे सौंपा गया है, इसलिए मेरा प्रस्ताव है कि भला काम शुरू में नहीं तो बाद में कर लेने के सिद्धान्त का पालन करते हुए सब लोग तीन बार नहीं, बल्कि तीन-तिया नौ बार और अगर हो सके तो नौ-तिया सत्ताइस बार उस व्यक्ति की जय बोलें जिसके जूतों के फीते खोलने के लायक भी हम नहीं हैं, जो आप सबको प्यार करती हैं और जो आप सबकों अपने बच्चों के समान समझती हैं । मेरा मतलब है कि सब मिलकर बोलिये "महामहिम सदा उदार महारानी विक्टोरिया की जय ।" वक्ता ने और क्या कहा वह नहीं सुना जा सका क्योंकि तभी चारों तरफ से जय-जयकार होने लगी और ह्यूम की आवाज शोर में डूब गयी । उनके इच्छानुसार लोगों ने बार-बार जयकार की ।

इस प्रकार काँग्रेस के जीवन का प्रारम्भ जी-हजूरी से हुआ लेकिन उसी काँग्रेस को एक दिन ब्रिटिश शासन ने गैर-कानूनी करार दिया । एक दिन वैसा भी आया जब उसी काँग्रेस को अंग्रेजी सरकार जहाँ-तहाँ ढूँढ़ती फिरती थी और आजादी के लाखों दीवाने उसके इशारे पर लड़ने-मरने को तैयार रहते थे ।

भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस ने भारत में राजनीतिक जागृति को एक नया मोड़ दिया । इस संगठन के मंच से देश के सभी प्रतिभाशाली बुद्धिजीवियों ने अपनी न्यायोचित माँगों पर आपस में विचार विमर्श किया तथा देश में नवचेतना जागृत की । प्रारम्भ में यह आन्दोलन उदारवादी और संवैधानिक आन्दोलन था । काँग्रेस ने अपने नरम कार्यक्रमों द्वारा ब्रिटिश सरकार का समर्थन प्राप्त किया और उस आधार का निर्माण किया जिस पर आगे आने वाले वर्षों का आन्दोलन सफलतापूर्वक चल सकता था । दरअसल भारतीय राष्ट्रीयता की नींव काँग्रेस ने ही डाली ।

मो० इमत्याजुल हक खाँ

❋❋❋

पाठ–3

भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस (1185 – 1947)

1885 से 1925 तक का काल प्रार्थनाओं, अपीलों और विशुद्ध वैधानिकतावाद का काल था । इस समय तक काँग्रेस के नेताओं को अँग्रेजों की लोकप्रियता और लोकतंत्रवादी भावना में विश्वास था । यद्यपि कलकत्ता कार्पोरेशन ऐक्ट, इण्डियन काउन्सिल ऐक्ट 1892 और इण्डियन युनिवर्सिटीज ऐक्ट से जनता संतुष्ट नहीं थी, फिर भी कांग्रेस के नेता प्रार्थनओं और अपीलों की नीति का अनुसरण करते रहे । 1905 के बंग-विभाजन की घोषणा एक ऐसा विस्फोट था

जिसने कांग्रेस के कुछ नेताओं को अपनी नीति में परिवर्तन करने को बाध्य कर दिया । श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने कहा है-"यह घोषणा एक बम के गोले के भांति गिरी । हमें ऐसा लगा कि हम अपमानित, विक्षिप्त और प्रवंचित किये गये हों ।"

इस विभाजन के फलस्वरूप चारों तरफ का वातावरण उग्र हो गया । ब्रिटिश सरकार की दमनकारी नीति के फलस्वरूप कांग्रेस में उग्रदलीय सदस्य बढ़ते गये और उन्होंने प्रार्थना का मार्ग छोड़कर आन्दोलन का मार्ग अपनाया । दादा भाई नौरोजी के सभापतित्व में हुए 1906 के कलकत्ता अधिवेशन में लाला लाजपत राय,श्री बाल गंगाधर तिलक और विपिन चन्द्र पाल ने यह प्रस्ताव रखा कि स्वदेशी आन्दोलन को अपनाया जाय, राष्ट्रीय शिक्षा को प्रोत्साहन दिया जाय और विदेशी वस्तुओं का वहिष्कार किया जाय । यद्यपि कांग्रेस के बहुत-से सदस्य इससे सहमत नहीं थे, परन्तु उन्हें झुकना पड़ा । यह अधिवेशन कांग्रेस की नीतियों में परिवर्त्तन का द्योतक था ।

1907 में सूरत में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ । इस अधिवेशन में कांग्रेस में फूट पड़ गई । गरम दल के नेता जिनमें लाला लाजपत राय, बाल गंगाधर तिलक और विपिन चन्द्र पाल प्रमुख थे, ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध आन्दोलनात्मक रवैया अपनाने की माँग कर रहे थे । नरम दल के नेता जिसमें श्री गोपाल कृष्ण गोखले, श्री फिरोज शाह मेहता, श्री सुरेन्द्र नाथ बनर्जी और पंडित मदन मोहन मालवीय थें, शान्तिपूर्ण एवं वैधानिक तरीकों को अपनाने के पक्षपाती थे । दोनों दलों में मतभेद इतना अधिक बढ़ा कि गरम दल वालों को कांग्रेस से बाहर निकाल दिया गया और तब से 10 वर्ष तक कांग्रेस पर पूर्ण रूप से नरम दल वालों का अधिकार रहा । इस फूट को बढ़ाने का ब्रिटिश सरकार ने पूर्ण प्रयत्न किया । उसने नरम दल वालों को मिण्टो-मार्ले के सुधारों का प्रलोभन देकर अपनी ओर मिला लिया और गरम दल वालों पर अत्याचार प्रारंभ किये । तिलक को माण्डले जेल भेज दिया गया, लाजपत राय को बिना मुकदमा चलाये अमेरिका भेज दिया गया और विपिन चन्द्र पाल को 6 मास का कठोर कारावास का दण्ड दिया गया ।

अंग्रेजों ने सदैव से ही 'फूट डालो और शासन करो' की नीति का अनुसरण किया । उन्होंने मुसलमानों को हिन्दुओं से अलग रखने का प्रयास किया । यह देश का दुर्भाग्य ही था कि सर सैयद अहमद खाँ जैसे नेता भी राष्ट्रीय आन्दोलन से अलग रहे और उन्होंने मुसलमानों को आन्दोलन से अलग रखा । । अक्टूबर 1906 को श्री आगा खाँ के नेतृत्व में तत्कालीन वाइसराय लार्ड मिण्टो से मुसलमानों का एक शिष्टमंडल मिला जिसमें उनके लिए पृथक निर्वाचन क्षेत्र के अतिरिक्त स्थानों की मांग की। वास्तव में यह सब कार्य लार्ड मिण्टो के इशारे पर हुए थे, अतएव उसने उनकी तुरन्त अनुमति दे दी । 6 दिसम्बर 1906 को इन्हीं सदस्यों ने भारतीय मुस्लिम लीग की स्थापना की जिसने ब्रिटिश सरकार के प्रति वफादारी व्यक्त की और राष्ट्रीय आन्दोलन पर कुठाराघात करना प्रारम्भ किया ।

1909 ई० में मिण्टो मार्ले सुधारों की घोषणा की गई । इन सुधारों के अनुसार काउन्सिल के सदस्यों की संख्या में वृद्धि कर दी गई तथा साम्प्रदायिक निर्वाचन की प्रथा का प्रारंभ हुआ । काउन्सिल के सदस्यों को प्रश्न पूछने तथा प्रस्ताव रखने का अधिकार प्रदान किया गया । इन सुधारों के फलस्वरूप भारतीयों को कोई महत्वपूर्ण शक्ति नहीं प्रदान की गई थी । ब्रिटिश सरकार हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच की खाई को गहरा करने में अवश्य ही पूर्ण सफल हुई ।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि 1906 ई० से लेकर 1915 ई० तक का युग आधुनिक फूट का युग था । हिन्दुओं और मुसलमानों में मतभेद उत्पन्न हुआ और कांग्रेस के गरम दल और नरम दल वालों में फूट पड़ी । परन्तु राष्ट्रीय आन्दोलन का वेग न रुका । कांग्रेस के बाहर हिंसा में विश्वास रखने वाले क्रांन्तिकारियों का जन्म हुआ, जिन्होंने लड़-मर कर स्वतंत्रता प्राप्त करना अपना ध्येय बनाया ।

1916 में लखनऊ में मुस्लिम लीग और कांग्रेस के बीच एक समझौता हुआ । इस समझौते के अनुसार कांग्रेस ने कुछ हद तक पृथक निर्वाचन के सिद्धांत को स्वीकार किया ।

1916 में लखनऊ सम्मेलन में गरम और नरम दल वालों का मतभेद दूर हो गया और गरम दल वाले पुनः कांग्रेस में सम्मिलित हो गये । इस सम्मेलन के फलस्वरूप कांग्रस को नई चेतना मिली । इसी सम्मेलन में लोकमान्य

तिलक ने स्वराज्य संबंधी प्रस्ताव रखा जो बहुमत से पारित हो गया । अंग्रेस सरकार से भारत में उत्तरदायी शासन की माँग की गई ।

1916 में बाल गंगाधर तिलक ने बंबई में और श्रीमती एनीबेसेन्ट ने मद्रास में होमरूल लीग की स्थापना की । तिलक ने 'केसरी' और 'मराठा' नामक पत्रों की सहायता से इस आन्दोलन का प्रचार किया । श्रीमती एनीबेसेन्ट ने भी 'कामन वीक' और 'न्यू इंडिया' नामक दो पत्रों की मदद से आन्दोलन के वेग को तीव्र बनाया । इस आन्दोलन के फलस्वरूप श्रीमती एनीबेसेन्ट और उनके दो सहयोगियों को गिरफ्तार कर लिया गया और तिलक से जमानत मांगी गई । फलस्वरूप जनता में घोर असंतोष व्याप्त हो गया ।

इसी समय भारतीय राजनीति में एक ऐसे महापुरूष का आगमन हुआ, जिसने देश की हवा को ही बदल दिया। यह महापुरुष थे महात्मा गाँधी । दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह से लौटने के बाद उन्होंने भारत आकर कांग्रेस में नई जान फूँक दी । 1920 में लोकमान्य तिलक जिनका नारा था 'स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है', की मृत्यु हो गई और तब से महात्मा गाँधी स्वतन्त्रता-संग्राम के सर्वेसर्वा बन गए ।

प्रथम महायुद्ध 1914 में प्रारंभ हुआ । अंग्रेजों तथा मित्र राष्ट्रों ने यह घोषण की कि वे युद्ध, स्वतन्त्रता, जनतंत्र और नागरिक अधिकारों की रक्षा के लिए लड़ रहे हैं । इस युद्ध में महात्मा गाँधी के नेतृत्व में कांग्रेसियों ने ब्रिटिश सरकार का साथ दिया और भारतीय सैनिकों ने इस युद्ध में अद्‌भुत वीरता का परिचय दिया । परन्तु इसी बीच सरकार ने राष्ट्रीय आन्दोलन दबाना प्रारंभ कर दिया । जनता क्षुब्ध हो गई और जगह-जगह षडयंत्र प्रारम्भ हुए, फलस्वरूप, ब्रिटिश सरकार ने 1917 में यह घोषणा की कि वह भारत को आंशिक स्वराज्य दे देगी ।

1917 में भारत-सचिव मान्टेग्यू तथा तत्कालीन वाइसराय चेम्सफोर्ड ने समस्त भारत का भ्रमण करके यह सुधार योजना प्रस्तुत की । इस योजना के अनुसार विधानसभा के अधिकार बढ़ा दिये गये और प्रांतों में दोहरी शासन प्रणाली स्थापित की गई। इन सुधारों को 1919 के ऐक्ट के रूप में पारित कर दिया गया । कांग्रेस के नरम दल वालों ने सुधारों को स्वीकार किया परन्तु गरम दल वालों ने उनकी तीखी आलोचना की । परिणामस्वरूप कुछ नरम दल वाले कांग्रेस से अलग हो गये और उन्होंने भारतीय उदार दल संघ की स्थापना की ।

भारतवासी दिन-प्रति-दिन स्वतंत्रता के आन्दोलन को तेज कर रहे थे । इस राष्ट्रीय आन्दोलन के दमन हेतु रौलेट ऐक्ट पारित किया गया । इस ऐक्ट के अनुसार सरकार को यह अधिकार दिया गया कि वह राजद्रोहात्मक हलचलों का सख्ती से दमन कर सकती हैं और किसी भी व्यक्ति को बिना वारंट के गिरफ्तार कर सकती है । इस ऐक्ट का तीव्र विरोध हुआ । उसे बिना अपील, बिना वकील तथा बिना दलील का कानून कहा गया । गाँधीजी ने 30 मार्च, 1919 को इस ऐक्ट के खिलाफ देशव्यापी आन्दोलन कर दिया ।

मुसलमानों ने भी रौलेट ऐक्ट के विरुद्ध कांग्रेस का साथ दिया । इसका मुख्य कारण यह था कि मुसलमान खिलाफत के प्रति अंग्रेजों की नीति से क्षुब्ध थे । अंग्रेजों ने टर्की के प्रथम युद्ध के पश्चात् मुसलमान खलीफा को गद्दी से उतार दिया था । कांग्रेस ने हिन्दुओं और मुसलमानों को मिलाने का यह एक स्वर्ण अवसर समझा । रौलेट ऐक्ट के विरोध के साथ ही खिलाफत का प्रश्न भी जोड़ दिया गया । इस आंदोलन के बड़े भयंकर परिणाम हुए । महात्मा गाँधी ने अहिंसात्मक आंदोलन छेड़ा परन्तु कई स्थानों पर हिंसात्मक घटनाएद हुई । दिल्ली, कलकत्ता, लाहौर और अमृतसर में अनेक हिंसात्मक घटनाएँ घटीं । पंजाब में अंग्रेज अधिकारी जनता के आंदोलन से घबड़ा उठे और उन्होंने 10 अप्रैल को डॉ० किचलू को गिरफ्तार कर लिया । फलस्वरूप जनता भड़क उठी और उसने उनकी गिरफ्तारी के विरुद्ध एक जुलूस निकाला । जब दल की पुलिस से मुठभेड़ हुई तब 5 यूरोपीयन मौत के घाट उतार दिये गये । नेताओं की गिरफ्तारी के विरुद्ध 17 अप्रैल 1919 को जालियाँवाला बाग में एक सार्वजनिक सभा का आयोजन किया गया जिसमें लगभग 10 हजार व्यक्ति सम्मिलित हुए । जनरल डायर ने इस सभा को गैर कानूनी घोषित कर दिया और अंधाधुन्ध गोलियाँ चलवानी शुरू कर दी । फलस्वरूप 309 व्यक्ति मारे गये और 1200 से अधिक व्यक्ति जख्मी हुए । लोगों पर तरह-तरह के अत्याचार शुरू किए गए और पंजाब में मार्शल लॉ लागू कर दिया गया । इस हत्याकांड की प्रतिक्रिया

समस्त देश में हुई और चारों तरफ क्रोध और प्रतिकार की भावना बढ़ती गई । महात्मा गाँधी ने ब्रिटिश सरकार से मांग की कि वह पंजाब के हत्याकांड की जाँच करें । उसकी जाँच हुई, परन्तु जनरल डायर के अपराध पर लीपा-पोती कर दी गई ।

20 अगस्त, 1920 को महात्मा गाँधी ने समस्त देश में असहयोग आंदोलन प्रारम्भ किया । इस आंदोलन में तीन बातें प्रमुख थीं –

(अ) काउन्सिल का बहिष्कार,

(ब) न्यायालयों का बहिष्कार,

(स) विद्यालयों का बहिष्कार ।

इसके अतिरिक्त सरकारी पदों, उपाधियों, दरबारों और विदेशी समान के बहिष्कार की भी बात कही गई थी । मुसलमानों ने भी इस आन्दोलन में भाग लिया और समस्त देश में हिन्दू-मुस्लिम एकता का बिगुल बज गया । असहयोग आन्दोलन ने अत्यन्त तीव्र रूप धारण किया । हजारों विद्यार्थियों ने अपने विद्यालय छोड़ दिए । राष्ट्रीय विद्यापीठों की स्थापना हुई । विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार किया गया और खादी एवं स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग बढ़ गया । खिलाफत सम्मेलन में मुसलमानों ने ब्रिटिश सरकार की नौकरी करना हराम घोषित कर दिया । यह आन्दोलन कितना व्यापक था इसकी कल्पना नहीं की जा सकती है । इस आन्दोलन के विषय में डॉ० राजेन्द्र प्रसाद ने लिखा है "Never before in the history of India since its connection with Britain, had popular indignation and popular enthusiasm between people were so great. Never during this long period had the country secured the loving and ungrudging services of many of her sons."

1921-22 में प्रिंस ऑफ वेल्स भारत आये । उनका स्वागत भारत में, प्रिंस ऑफ वेल्स वापस जाओ, के नारों से हुआ । देश में हड़ताल हुई और नारे लगाये गये तथा साम्प्रदायिक दंगे भी प्रारम्भ हो गये । फरवरी, 1922 को एक ऐसी घटना घटी जिसके फलस्वरूप महात्मा गाँधी ने सत्याग्रह आन्दोलन को स्थगित कर दिया । चौरीचौरा गाँव में कांग्रेस का एक विशाल जुलूस निकल रहा था । पुलिस ने उसे रोकना चाहा । प्रदर्शनकारियों ने जोश में आकर एक थाने में आग लगा दी जिसके फलस्वरूप एक दारोगा और 21 सिपाही जीवित भस्म हो गये । गाँधीजी हिंसात्मक घटना से क्षुब्ध हो गये और उन्होंने आंदोलन को स्थगित कर दिया । ऐसे समय में जब 23 हजार व्यक्ति जेल जा चुके थे और जनता स्वराज्य प्राप्ति का स्वप्न देख रही थी, आन्दोलन का स्थगित कर देना गाँधीजी का एक विचित्र कार्य था । पं० मोतीलाल नेहरू और लाजपत राय जैसे नेताओं ने गाँधीजी के इस कार्य की आलोचना की और बहुत से गाँधीभक्त भी गाँधी विरोधी बन गए । बंगाल और महाराष्ट्र में तो गाँधीजी की बहुत अधिक आलोचना हुई ।

ब्रिटिश सरकार ने यह देखा कि गाँधीजी की लोकप्रियता काफी कम हो गई है, अतएव उन्हें 13 मार्च, 1922 को कारावास का दण्ड दिया गया जिसके फलस्वरूप भारत के समस्त राजनीतिक क्षेत्र में उदासी छा गई । इसी काल में हिन्दू महासभा की स्थापना हुई । मुस्लिम लीग का नेतृत्व मि० जिन्ना के हाथ में आ गया । परिणामस्वरूप, साम्प्रदायिकता का बोल वाला हो गया । हिन्दू और मुसलमानों के बीच भयंकर रक्तपात हुआ ।

कांग्रेस के नेताओं ने साम्प्रदायिक झगड़ों से जनता को बचाने के लिए काउन्सिल में प्रवेश का कार्यक्रम बनाया । इन नेताओं में प्रमुख थे-मोतीलाल नेहरू और देशबन्धु चितरंजन दास । इस निर्णय के फलस्वरूप भी कांग्रेस में दो दल हो गये । एक दल काउन्सिल में प्रवेश का पक्षपाती था और दूसरा विरोधी । परिणाम यह हुआ कि नेहरू और दास ने मिलकर अपनी एक पार्टी बना ली और इस बात का प्रचार किया कि चुनाव में भाग लेकर विधानसभा में आना चाहिए । बाद में कांग्रेस के अन्य नेताओं ने भी उनका साथ दिया । इस पार्टी को काउन्सिल प्रवेश के कार्यक्रम में बहुत अधिक सफलता मिली और उसके बहुत-से सदस्य प्रांतों की विधान सभाओं में पहुँच गये । श्री बिट्ठल भाई पटेल केन्द्रीय असेम्बली के अध्यक्ष बने । 1925 में देशबन्धु चितरंजन दास की मृत्यु हो गई और उनकी मृत्यु से स्वराज्य पार्टी

को बहुत अधिक धक्का लगा । देश में साम्प्रदायिक दंगे प्रारम्भ हो गये और काउन्सिल के चुनाव में स्वराज्य पार्टी को पहले जैसी सफलता नहीं मिली ।

1927 में भारत में शासन-संबंधी सुधारों की जाँच करने हेतु साइमन कमीशन भारत आया । इस कमीशन के आगमन के फलस्वरूप देश में राजनीतिक चेतना की लहर पुनः तेजी से व्याप्त हो गई । जगह-जगह कमीशन के सदस्यों को काले झण्डे दिखलाए गए । इसी समय अंगरेजों ने भारतवासियों से यह कहा कि तुम एक होकर अपनी माँगों को हमारे सामने रखो । अंग्रेज जानते थे कि हिन्दू और मुसलमान कभी भी एक नहीं हो सकते । भारतीयों ने अंग्रेजों की इस चुनौती को स्वीकार किया ।

कांग्रेस के नेताओं ने अंग्रेजों की चुनौती को स्वीकार करते हुए लखनऊ में सर्वदलीय सम्मेलन का आयोजन किया । हिन्दुओं और मुसलमानों ने मिलकर पं० मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में बनाई गई समिति की रिपोर्ट को सरकार के सामने रखा । यह रिपोर्ट 'नेहरू रिपोर्ट' के नाम से प्रसिद्ध है । ब्रिटिश सरकार ने नेहरू रिपोर्ट की एक भी सिफारिश नहीं मानी ।

कांग्रेस का चतुर्थ विकास-काल वह काल था जिसमें भारत के लिए सम्पूर्ण स्वाधीनता की माँग की गई । 1929 में लाहौर में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ । इस अधिवेशन में पहली बार पूर्ण स्वराज्य पर स्वतन्त्रता को लक्ष्य बनाने की घोषणा की गई । अधिवेशन के निर्णयानुसार 26 जनवरी, 1930 को समस्त देश में पहला स्वतन्त्रता दिवस मनाया गया और यह निश्चय किया गया कि जब तक पूर्ण स्वराज्य की घोषणा नहीं की जाती, भारतवासी चैन से नहीं बैठेंगे ।

पूर्ण स्वतन्त्रता की घोषणा के फलस्वरूप भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन को नया जीवन मिला । ब्रिटिश सरकार भारतीयों की इस माँग को स्वीकार करने को तत्पर नहीं थी और दमन का चक्र चलाये जा रही थी जिसके फलस्वरूप 14 फरवरी, 1930 को साबरमती आश्रम में कांग्रेस की एक बैठक में महात्मा गाँधी को सविनय-अवज्ञा आन्दोलन चलाने का अधिकार दिया गया । 12 मार्च, 1930 को अपने 79 चुने हुए साथियों के साथ नमक कानून भंग करने के लिए महात्मा गाँधी ने डाँडी यात्रा की, 6 अप्रैल को उन्होंने नमक कानून भंग किया । समस्त देश में नमक कानून तोड़े गए । अनेक स्थानों पर गोलियाँ चलीं । शोलापुर में मार्शल लॉ लागू कर दिया गया । कांग्रेस कमिटियों को गैर कानूनी घोषित कर दिया गया और महात्मा गाँधी सहित लगभग एक लाख व्यक्तियों को जेल में ठूंस दिया गया ।

इस आन्दोलन के फलस्वरूप ब्रिटिश सरकार हिल गई और सर तेजबहादुर सप्रू तथा डॉ० जयकर के प्रयत्नों से 31 मार्च, 1931 को गाँधी-इरविन समझौता हुआ जिसके परिणामस्वरूप राजनीतिक बन्दियों को जेलों से मुक्त कर दिया गया और महात्मा गाँधी द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने के लिए लन्दन गए ।

दूसरे गोलमेज सम्मेलन में कोई उचित निर्णय न हो सका । इसका मुख्य कारण यह था कि ब्रिटिश सरकार ने हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच फूट पैदा करने के लिए ही यह सम्मेलन बुलाया था, किसी निर्णय पर पहुँचने के लिए नहीं । महात्मा गाँधी खाली हाथ भारत आए तो यहाँ अंग्रेजों का दमन-चक्र पूर्ण रूप से चल रहा था । हजारों भारतीय जेलों में बन्द किए जा रहे थे । महात्मा गाँधी ने वायसराय से मिलने के लिए प्रयत्न किया परन्तु उन्हें गिरफ्तार कर जेल भेज दिया गया । काँग्रेस को गैर-कानूनी करार दे दिया गया और देश में अनेक कायदे कानून लागू हो गये ।

1928 में महात्मा गाँधी जब जेल में थे तो ब्रिटेन के तत्कालीन प्रधानमंत्री रैम्जे मेक्डॉनल्ड ने एक साम्प्रदायिक निर्णय दिया जिसके फलस्वरूप निर्वाचन में अछूतों को हिन्दुओं से अलग करके उनके लिए अलग सीटों की व्यवस्था की गई । जब महात्मा गाँधी ने यह सुना तो उन्होंने जेल में ही आमरण अनशन शुरू कर दिया जिसके फलस्वरूप हरिजन, हिन्दू समाज के अन्दर ही रहे । तत्पश्चात् गाँधी जी ने अस्पृश्यता को दूर करने के लिए 21 दिन का एक व्रत रखा । 18 मई, 1933 को महात्मा गाँधी जेल से मुक्त हुए और उसके एक वर्ष बाद उन्होंने अवज्ञा आन्दोलन वापस ले लिया ।

1935 में ब्रिटिश सरकार ने एक नया अधिनियम पारित किया । इस अधिनियम के अन्तर्गत केन्द्र में द्वैध

शासन-प्रणाली और प्रान्तों में विशेषाधिकार युक्त उत्तरदायी शासन की योजना बनाई गई । 1937 में जब आम चुनाव हुए तो कांग्रेस ने उसमें भाग लिया और 6 प्रान्तों में उसे पूर्ण बहुमत मिला तथा दो प्रांतों में वह प्रांतीय धारा सभा में सबसे बड़ा दल बना । 6 राज्यों में काँग्रेसी मन्त्रिमण्डल बने और दो राज्यों में उसकी मिली-जुली सरकार बनी । काँग्रेसी मन्त्रियों ने लोक-कल्याण की दृष्टि से महत्वपूर्ण कार्य किये ।

1939 ई० में दूसरा महायुद्ध छिड़ गया और ब्रिटिश सरकार ने पुनः भारतवासियों को युद्ध की अग्नि में झोंक दिया । फलस्वरूप रुष्ट होकर काँग्रेस मन्त्रियों ने त्याग-पत्र दे दिया । नवम्बर, 1940 में काँग्रेस ने पुनः 'व्यक्तिगत सविनय अवज्ञा आन्दोलन' छेड़ दिया ।

मार्च 1941 में स्टैफोर्ड क्रिप्स ब्रिटिश सरकार की ओर से भारत आए और उन्होंने काँग्रेसी नेताओं से यह वायदा किया कि यदि वे युद्ध में ब्रिटिश सरकार का साथ देंगे तो युद्ध के पश्चात् उनके आत्म निर्णय के सिद्धांत को स्वीकार कर लिया जाएगा । काँग्रेस के नेताओं ने युद्ध के पश्चात् की शर्त स्वीकार नहीं की और समझौता वार्ता टूट गई ।

क्रिप्स मिशन की असफलता के पश्चात् काँग्रेस के बम्बई अधिवेशन में 'भारत छोड़ो आन्दोलन' और 'करो या मरो' आन्दोलन के प्रस्ताव पारित किये गये । इन प्रस्तावों के पश्चात् समस्त देश में ब्रिटिश सरकार का तांडव नृत्य प्रारम्भ हो गया । हजारों व्यक्तियों को भारतीय रक्षा कानून के अन्तर्गत जेल में बन्द कर दिया गया और देश के सभी बड़े-बड़े नेताओं को बन्दी बना लिया गया । महात्मा गाँधी को आगा खाँ के महल में बन्द कर दिया गया । ब्रिटिश सरकार के अत्याचारों के कारण महात्मा गाँधी ने जेल में 21 दिन का अनशन किया । देश में रोष का वातावरण उत्पन्न हो गया तथा महात्मा गाँधी को छोड़ने के लिए जोरदार आवाज उठाई गई । परन्तु ब्रिटिश सरकार ने यह बात नहीं मानी ।

1941 में बंगाल में भीषण दुर्भिक्ष पड़ा जिसके फलस्वरूप लगभग 30 लाख व्यक्ति मर गये । लोग सड़कों पर मरते रहे और अनाज गोदामों में बन्द रहा । इस दुर्भिक्ष से ब्रिटिश सरकार के निकम्मेपन की पूर्ण जानकारी हो गई । 1942 में सुभाष चन्द्र बोस जब जेल से बाहर निकले तो वह अपने घर एकान्तवास के लिए चले गये । एक दिन वह काबुल होते हुए जर्मनी पहुँच गये । 1942 में वह एक पनडुब्बी से जापान पहुँचे और टोक्यो सरकार से मिलकर उन्होंने सिंगापुर और बर्मा में आजाद हिन्द फौज का संगठन किया तथा अपनी एक स्थायी सरकार बनाई जिसे 9 राष्ट्रों ने स्वीकार कर लिया । मार्च 1944 में उनकी सेनाएँ मणिपुर की रियासत इम्फाल पर चढ़ आई । दुर्भाग्यवश, नेताजी को असफलता मिली । नेताजी तो अन्तर्धान हो गये परन्तु दिल्ली के लाल किले में आजाद हिन्द फौज के वीर सेनानियों कर्नल शाहनवाज, सहगल और ढिल्लन पर मुकदमा चला जिससे देश में जोश की भावना फैल गई । नेताजी कहाँ गए यह अब भी विवादास्पद प्रश्न है ।

1942 के जन आंदोलन के पश्चात् ब्रिटिश सरकार यह पूर्ण रूप से समझ गई कि अब भारतीयों से समझौता किये बिना काम नहीं चलेगा । फलस्वरूप तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड वेवेल ने 1945 में एक योजना के अनुसार काँग्रेस से समझौते की बातें चलाई । भारतीय नेताओं का सम्मेलन बुलाया गया । लार्ड वेवेल अपनी कार्यकारिणी में 6 हिन्दू तथा 5 मुसलमानों को रखने के लिए तैयार हो गये परन्तु नामों पर समझौता न हो सका और इस कारण शिमला सम्मेलन असफल रहा ।

दूसरे महायुद्ध के पश्चात् ब्रिटेन में जो आम चुनाव हुआ उसमें मजदूर दल की विजय हुई और ब्रिटिश सरकार ने मार्च 1946 में कैबिनेट मिशन भारत भेजा । कैबिनेट मिशन ने भारत के सभी प्रांतों को तीन भागों में संगठित करने, सम्पूर्ण देश के लिए संविधान सभा की व्यवस्था करने और अन्तरिम काल के लिए अन्तरिम सरकार की स्थापना करने का प्रस्ताव किया । नवम्बर, 1946 में कैबिनेट मिशन की योजना के अनुसार भारत की संविधान सभा के लिए चुनाव हुआ जिसमें काँग्रेस को 205 तथा मुस्लिम लीग को 73 सीटें मिलीं । पं० जवाहर लाल नेहरू के नेतृत्व में 2 सितम्बर, 1946 को एक अन्तरिम सरकार कठित की गई जिसमें पहले मुस्लिम लीग सम्मिलित नहीं हुई, परन्तु बाद में उसके पाँच सदस्य भी सरकार में सम्मिलित हो गये ।

मुस्लिम लीग की माँग स्वतन्त्र पाकिस्तान की थी । इस माँग को पूरा करने के लिए उसने 16 अगस्त, 1946 को प्रत्यक्ष कार्यवाही दिवस मानने का निश्चय किया । कलकत्ता और नोआखाली में भीषण नरसंहार हुआ और देश में मुस्लिम साम्प्रदायिकता का ताण्डव नृत्य देखने को मिला । काँग्रेस की सतर्कता के फलस्वरूप अधिक उपद्रव न हो सके ।

मार्च 1947 में लार्ड वेवेल के स्थान पर माउण्टबेटन भारत के गवर्नर जनरल बनकर आये । उन्होंने काँग्रेस और लीग के नेताओं से वार्ता करके 3 जून को उनके सम्मुख एक नई योजना रखी । इस योजना में देश का विभाजन और स्वाधीनता की बात थी । देश का विभाजन अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण था, परन्तु उसको स्वीकार करने के अतिरिक्त काँग्रेस के पास कोई दूसरा चारा न था क्योंकि मिस्टर जिन्ना और मुस्लिम लीग के अन्य सदस्य पाकिस्तान बनाने के लिए दृढ़ संकल्प थे । योजना स्वीकार की गई और फलस्वरूप 15 अगस्त, 1947 को भारत स्वतन्त्र घोषित कर दिया गया, परन्तु उसके दो टुकड़े कर दिये गये ।

भारतीय स्वाधीनता अधिनियम के फलस्वरूप भारत को स्वतन्त्र किया गया । परन्तु इसके दो खण्ड हो गये । देश की स्वाधीनता के पश्चात् ही भारत पर अनेक कठिनाइयाँ टूट पड़ीं । शरणार्थियों की समस्या और विभिन्न रियासतों की समस्या ये दो समस्याएँ थीं जिनका देश के कर्णधारों ने बड़ी सावधानी से समाधान किया ।

21 जून 1947 की लार्ड माउन्टबेटेन के स्थान पर चक्रवर्ती राजगोपालाचारी को भारत का गवर्नर जनरल नियुक्त किया गया । भारतीय संविधाान 26 नवंबर, 1947 को पारित किया गया और 26 जनवरी 1950 से वह समस्त देश में लागू हो गया । इस संविधान के अनुसार भारत में एक ऐसे गणराज्य की स्थापना की गई जिसमें सबको समान राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक अधिकार प्राप्त हुए ।

भारतीय संविधान के लागू होने के पश्चात् देश में राजनीतिक चेतना उत्पन्न करने के अनेक प्रयास किये गये और आज का भारतवासी राजनीतिक दृष्टि से बहुत अधिक सचेष्ट है । देशवासियों में कितनी अधिक राष्ट्रीयता की भावना है उसका परिचय चीन और पाकिस्तान के युद्ध के समय हुआ, परन्तु देश में सांप्रदायिकता, जातीयता, भाषावाद और भ्रष्टाचार आदि ऐसी कुरीतियाँ व्यापत हैं जो हमारी राष्ट्रीय विचारधारा को कुंठित किये दे रही हैं । इन कुरीतियों को शीघ्रताशीघ्र दूर करके अपने देश को गौरवशाली बनाना है । इसके लिए हमें देशवासियों में सच्चे रूप में राजनीतिक चेतना उत्पन्न करनी होगी और उनका ध्यान अतीत की ओर दिलाकर उनमें मिल-जुलकर काम करने की भावना उत्पन्न करनी होगी तथा प्रत्येक भारतवासी को यह संकल्प करना होगा, "मैं रहूँ या ना रहूँ, मेरा देश उन्नति करता रहे । मेरा कुछ नहीं है जो कुछ है वह मेरे देश का है । जिस स्वतन्त्रता की प्राप्ति हमारे नेताओं ने अपने खून से की है उसे हमें सुरक्षित रखना है और आगे बढ़ना है ।"

❋❋❋

पाठ–4

क्रांतिकारी आन्दोलन का उदय; स्वरूप तथा परिणाम

(Rise, Nature & Impact of Revolutionaries)

1905 ई० तक राष्ट्रीय काँग्रेस के नेताओं ने अंगरेजी सरकार के विरुद्ध प्रत्यक्ष रूप से कोई संघर्ष का रास्ता नहीं अपनाया, पर बंग-विभाजन के साथ ही उग्रवादी आन्दोलन ने भयंकर रूप धारण कर लिया । 1907 ई० के सूरत काँग्रेस में नरम दल के काँग्रेसी और गरम दल के काँग्रेसी के बीच की खाई इतनी बढ़ गयी थी कि 1916 ई० तक गरम दल वाले काँग्रेस से अलग रहे । सूरत काँग्रेस के पश्चात् राजनीतिक अशांति को दबाने के लिए अंग्रेज सरकार ने

दमनकारी नीति अपनायी और भारतीयों पर विभिन्न प्रकार के प्रतिबन्ध लगाये । परिणामस्वरूप भारतीय राजनीतिक क्षेत्र में उग्रवादी आन्दोलन की एक नई धारा का जन्म हुआ जिसे आतंकवादी या क्रांतिकारी आन्दोलन कहते हैं । आतंकवादी बलपूर्वक अंगरेजी राज्य को समाप्त करना चाहते थे । सरकार की दमन नीति का जवाब आतंकवादियों ने आतंक से देना प्रारम्भ किया ।

इस आन्दोलन के उदय के निम्नलिखित कारण थे–

(1) **लार्ड कर्जन की प्रतिक्रियावादी नीति**–लार्ड कर्जन जैसे प्रतिक्रियावादी शासक अगर भारत में न आते तो राष्ट्रीय आन्दोलन का स्वरूप कुछ और होता । कर्जन द्वारा 1906 ई० में बंगाल के विभाजन का परिणाम देश के कोने-कोन में परिलक्षित हुआ । धर्म के आधार पर बंगाल का विभाजन किया गया । किन्तु ऐसा करने में प्रशासनिक सुविधा की दुहाई दी गई थी । बंगाल में बढ़ती राष्ट्रीयता का गला घोंटने के उद्देश्य से ही बंग-विभाजन हुआ था । बंग-विभाजन ब्रिटिश सरकार की "Divide and Rule" की नीति पर आधारित था । राष्ट्रीय आन्दोलन में उग्रवाद के उदय का मुख्य कारण बंगाल का विभाजन था । कर्जन के कुछ अन्य कार्य भी आक्रोश बढ़ाने के कारण बने । जैसे 1904 ई० का Universities Act—जिसके द्वारा छात्रों में बढ़ती हुई राष्ट्रीयता की भावना पर रोक लगाने का प्रयास किया गया था पर उससे शिक्षित युवकों के बीच असंतोष बढ़ता गया जिसने बाद में उग्र रूप धारण कर लिया ।

(2) **सरकारी दमन-चक्र में तेजी**–सरकार ने बल प्रयोग द्वारा उग्रवादियों को दबाने का प्रयास किया । 1907 ई० में बिना मुकदमा चलाये लाला लाजपत राय और अजीत सिंह को जेल भेज दिया गया था । दमन-चक्र को तेज करते हुए 1907 ई० में सभाओं पर प्रतिबन्ध लगाने के लिए Seditious Meetings Act पास किया गया । समाचारपत्रों पर प्रतिबन्ध लगाने के लिए Newspaper (incitement to offences) Act पास कर दिया गया और Criminal law Amendment Act भी 1908 ई० में लागू किया गया । इन दमन-चक्रों से आन्दोलन कमजोर पड़ने के बजाय और तेज हो गया । बंगाल में स्वदेशी आन्दोलन के दौरान पुलिस ने सभाओं में लाठी चार्ज किए तथा नेताओं और उनके समर्थकों को जेल भेजना शुरू किया लेकिन इसका प्रभाव उल्टा पड़ा । सरकार राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रगति पर रोक लगाने के लिए यह कार्य कर रही थी लेकिन भारतीय युवकों ने आतंक का जवाब आतंक से देना शुरू किया और गुप्त रूप से सारे देश में षडयन्त्रकारियों के दल का निर्माण हुआ जो बम बनाते थे और मौका पाते ही इन बमों का व्यवहार अंगरेज अफसरों पर कर देते थे ।

(3) **आर्थिक असंतोष**–आर्थिक असंतोष सभी आन्दोलनों की जड़ है । भारत में उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में अनेक बार अकाल और महामारी का प्रकोप रहा । इन परिस्थितियों में ब्रिटिश सरकार की उपेक्षापूर्ण नीति से असंतोष बढ़ता ही जा रहा था । 1897 के अकाल का प्रभाव लगभग 20 लाख व्यक्तियों पर पड़ा । पूना और बम्बई में प्लेग की महामारी के दौरान जिन फौजियों को लोगों की सहायता करने के लिए भेजा गया था वे लोगों पर अत्याचार करने लगे । चपेकर भाइयों ने प्लेग कमीश्नर Rand तथा उनके सहयोगी Ayerest की हत्या कर दी । तिलक ने सरकार की नीति की आलोचना की तो उनपर मुकदमा चलाकर उन्हें 18 माह के कठोर कारावास की सजा दी गयी । इसका असर पूरे देश पर पड़ा । भारतीय उद्योग-धन्धों को जान बूझकर नष्ट किया जा रहा था जिससे हजारों युवक बेकार हो रहे थे । बेकार युवकों के भूखे पेट में आतंकवाद पलने लगा ।

(4) **संवैधानिक मार्ग की असफलता**–कॉंग्रेस ने अपने प्रारम्भिक वर्षों में सवैधानिक मार्ग अपनाया था और टकराव की नीति का बहिष्कार किया था । लेकिन, 1909 के Morley Minto Reforms में मुसलमानों

के लिए अलग मतदान की व्यवस्था की गयी । यह भी Divide and Rule की नीति पर आधारित था। केन्द्रीय तथा प्रांतीय विधान मण्डलों में भारतीय सदस्यों की राय की कोई कीमत नहीं थी । संवैधानिक मार्ग पर चलने वाले कांग्रेसी नेता निराश हो चुके थे। इस परिस्थितियों में आतंकवाद की ओर झुकाव बढ़ता गया ।

(5) **अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति**–अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियाँ भी आतंकवाद के मार्ग को प्रशस्त करने में सहायक हुईं । 1905 में जापान जैसे छोटे देश ने रूस को पराजित किया, जिससे क्रांतिकारियों को बहुत अधिक प्रेरणा मिली । दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों के साथ निन्दनीय व्यवहार किये जाते थे । 1905 ई० में एशियाई रजिस्ट्रेशन एक्ट पास किया गया था जिसके अन्तर्गत दक्षिण अफ्रीका में रहने वाले हरेक भारतीय को अपना अँगुली-चिन्ह लगाकर रजिस्टर्ड होना पड़ता था। इन सबों के प्रति ब्रिटिश सरकार उदासीन थी । भारतीयों में इससे बहुत रोष पैदा हुआ और वे सरकार के विरुद्ध शस्त्र उठाने में पीछे नहीं रहे । भारतीय युवकों के मन में यह बात बैठ गयी कि आजादी की कीमत खून से चुकायी जाती है और वे प्राणों की आहुति देने के लिए तैयार हो गये ।

(6) **आतंकवादी या उग्रपंथी आंदोलन का स्वरूप**–अंग्रेज शासक वर्ग के लोगों ने क्रांतिकारियों को डाकू, हत्यारे या आतंकवादी कहा । उपरोक्त नाम देकर क्रांतिकारियों का अपमान करना ही अंग्रेजों का उद्देश्य था । क्रांतिकारियों के कार्यक्रम में आतंकवाद का आभास अवश्य मिलता है, लेकिन अराजकता फैलाना उनके कार्यक्रम में नहीं था । उन्होंने कभी भी रूसी निहिलिस्टों की तरह देश में अराजकता फैलाने का प्रयास नहीं किया ।

क्रांतिकारी आतंक का राज्य स्थापित करना नहीं चाहते थे । बल्कि अत्याचारी शासकों के मन में आतंक उत्पन्न करना चाहते थे । जिन अत्याचारी अंग्रेज शासकों ने देशभक्तों के विरुद्ध अत्याचार किया था वे ही क्रान्तिकारियों के लक्ष्य थे । वे बदले की भावना से प्रेरित थे । क्रान्तिकारियों ने शायद ही किसी निर्दोष अंगरेज को अपना लक्ष्य बनाया होगा। क्रांतिकारी अंगरेजी शासन, सभ्यता संस्कृति एवं भाषा के कट्टर विरोधी थे और उन्हें भारतवर्ष से बलपूर्वक उखाड़ फेंकना चाहते थे । वे भारतीय सैनिकों को भी विदेशी शासन के विरुद्ध शस्त्र उठाने की प्रेरणा देते थे ।

क्रांतिकारी शक्ति के उपासक थे । अत्याचारी अंगरेज शासकों को सबक सिखाने के लिए वे उन पर गोली चलाते थे या बम फेंकते थे । पकड़े जाने पर उन्हें फाँसी या देश-निर्वासन या आजीवन कारावास की सजा दी जाती थी। फिर भी, वे अपने उद्देश्य की पूर्त्ति के लिए अपनी राह पर अडिग थे ।

क्रांतिकारी आन्दोलन के संचालक तथा कार्यकर्त्ता मातृभूमि के अनन्य भक्त थे । देश की स्वतन्त्रता के लिए वे हर सम्भव बलिदान देने के लिए तैयार थे । वे अपने देशवासियों पर होने वाले अत्याचार को बर्दास्त नहीं कर सकते थे। वे देश को पराधीनता की जंजीरों से मुक्त कराना चाहते थे तथा सामाजिक और आर्थिक असमानताओं का अन्त कर समानता के आधार पर राष्ट्र का निर्माण करना चाहते थे । मध्यवर्गीय शहरी युवक ही प्रायः इसमें भाग लेते थे ।

उग्रपंथी क्रांतीकारीं आंदोलन का विस्तार–

क्रांतीकारी आन्दोलन का मुख्य क्षेत्र बंगाल, महाराष्ट्र, पंजाब तथा मद्रास था । बंगाल में उग्रपंथी क्रांतिकारी आन्दोलन के प्रमुख नेता वारीन्द्र कुमार घोष तथा भूपेन्द्र नाथ दत्त थे । उन लोगों ने 1906 ई० से 'युगान्तर' साप्ताहिक पत्रिका का प्रकाशन किया और उसके माध्यम से लगातार क्रांतीकारी कार्य पर जोर देते रहे । 1907 ई० में बंगाल के गवर्नर की गाड़ी पर बम फेंक कर उसे उड़ाने का प्रयास किया गया पर वे बाल-बाल बच गये । ढाका के जिला मजिस्ट्रेट पर भी गोली चलायी गयी पर वे बच गए । कलकत्ता के प्रधान प्रसीडेंसी मजिस्ट्रेट किंग्सफोर्ड ने स्वदेशी आन्दोलन के दौरान छात्रों को कोड़े से पिटवाया था । उसका तबादला मुजफ्फरपुर जिला के न्यायाधीश के पद पर हो गया । 1908 में खुदीराम बोस और प्रफुल्ल चाकी नाम के दो युवकों ने उसकी गाड़ी पर बम फेंका लेकिन दुर्भाग्यवश उससे दो अन्य अंगरेजों की हत्या हो गयी । चाकी ने आत्महत्या कर ली और खुदीराम बोस को फाँसी दे दी गयी ।

खुदीराम के शहीद होने के दो महीने बाद कलकत्ते में एक बहुत बड़े क्रांतिकारी षडयंत्र का पता चला जो अलीपुर षडयंत्र मामला के नाम से प्रसिद्ध है । वारीन्द्र कुमार घोष और अरविन्द घोष गिरफ्तार कर लिए गये । इसमें कन्हाई लाल और सत्येन्द्र को फाँसी दे दी गयी । मुकदमा की सुनवाई के बीच में सरकारी दारोगा और वकील की हत्या कर दी गयी । प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान क्रांतिकारियों को एक कर्मचारी की सहायता से कलकत्ते के एक फर्म से पिस्तौल, गोली आदि मिली । यतीन मुखर्जी के नेतृत्व में बंगाल की अनेक राजनीतिक समितियों ने एकजुट होकर रेल व्यवस्था में बाधा डालने और फोर्ट विलियम पर कब्जा करने की योजना बनायी । नरेश भट्टाचार्य को जर्मन अस्त्र-शस्त्र लाने का काम सौंपा गया लेकिन यह योजना सफल नहीं हो सकी और बाघा वालासार के पास उसकी वीरोचित मृत्यु हो गयी ।

महाराष्ट्र में आतंकवाद का पहला आभास प्लेग कमिश्नर मि० रेन्ड की हत्या (1897 ई०) में ही मिल जाता है। दामोदर और बालकृष्ण चापेकर ने यह हत्या की थी । तिलक को 1908 ई० में जेल भेज देने के प्रतिक्रियास्वरूप पूरे देश में हड़ताल हुई । महाराष्ट्र में इस हड़ताल के दौरान 16 व्यक्ति मारे गये । विनायक दामोदर सावरकर और गणेश सावरकर ने 'मित्रमेला' नामक एक संस्था की स्थापना की जो आगे चलकर 'अभिनव भारत' नामक गुप्त संस्था के रूप में विकसित हुई । विनायक दामोदर सावरकर और श्यामजी कृष्ण वर्मा, लंदन चले गये और गणेश सावरकर आतंकवादी आंदोलन को चलाते रहे । 1909 ई० में लंदन से वी० डी० सावरकर ने गणेश सावरकर को पिस्तौल का एक पार्सल भेजा पर वह पकड़ा गया । गणेश सावरकर को बन्दी बनाकर कालापानी भेजा गया । 'अभिनव भारत' को गैरकानूनी संस्था घोषित किया गया । सावरकर की गिरफ्तारी के विरुद्ध नासिक के जिलाधीश मि० जैक्सन की हत्या में अनन्त कान्हरे का हाथ था । नासिक षडयंत्र केस में अनन्त कान्हरे, विनायक राव देशपांडे और कृष्णजी पंत को फाँसी की सजा दी गयी । ग्वालियर में नवभारत समिति क्रांतिकारियों की एक सक्रिय समिति थी । 1910 ई० में वी० डी० सावरकर को लंदन से गिरफ्तार कर अण्डमान भेज दिया गया । महाराष्ट्र के क्रांतिकारियों में बासुदेव बलवन्त फड़के का नाम उल्लेखनीय है । उन्होंने महाराष्ट्र में अकाल के दौरान क्रांतिकारी विचार को फैलाने में महत्वपूर्ण योगदान किया ।

पंजाब के क्रांतिकारियों में लाला लाजपत राय, लाला हरकिशन लाल और अजीत सिंह का नाम उल्लेखनीय है। 1907 ई० में ब्रिटिश सरकार की गलतियों के कारण पंजाब में आतंकवादी आंदोलन की शुरूआत हुई । 1907 ई० में लाला लाजपत राय को देश निर्वासन की सजा मिली । अजीत सिंह का संगठन आतंकवादी कार्यों में सक्रिय था । लाला पिंडी दास ने अपने समाचार पत्र के द्वारा पंजाब में विशेष जोश पैदा किया था । इसलिए इन्हें भी कैद कर लिया गया। जेल से छूटने के बाद अजीत सिंह व सूफी अम्बा प्रसाद ईरान भाग गये और वहाँ से अपना काम जारी रखा ।

मद्रास में 1906 ई० से हीं बंगाल के स्वदेशी आंदोलन के समर्थन में सभाएँ होती थीं । 1907 ई० में काकिनादा में यूरोपीय क्लब पर भीड़ ने हमला कर दिया क्योंकि एक अंगरेज साहब ने एक बच्चे को 'वन्दे मातरम' चिल्लाने पर घूंसा मारा था । तिन्नवली में 1908 ई० में एक भारी दंगा हुआ जिसमें कई सरकारी भवनों को आग लगा दी गयी । 1911 ई० में तमिल क्रांतीकारियों ने तिनेवली के जिला-मजिस्ट्रेट (Ashe) की गोली मारकर हत्या कर दी । सुब्रह्मण्यम अय्यर, चिदम्बरम् पिल्ले, सुब्रह्मण्यम शिवा और सुब्रह्मण्यम भारती, जो प्रसिद्ध कवि थे मद्रास के क्रांतिकारियों में प्रमुख थे ।

1912 ई० में राजधानी के कलकत्ते से दिल्ली परिवर्तन के अवसर पर एक समारोह का आयोजन किया गया था और उसी समय Ashe पर बम फेंका गया था, पर उस समय वे बाल-बाल बच गये । दिल्ली षडयंत्र मामले में मास्टर अमीरचन्द्र, अवध बिहारी, भाई बालमुकुन्द, हनुमन्त सहाय इत्यादि प्रमुख व्यक्ति गिरफ्तार कर लिए गये । मार्च 1914 में उनपर मुकदमा चलाया गया ।

भारत के बाहर इंगलैंड, अमरीका, कनाडा इत्यादि देशों में भी क्रांतिकारियों की गतिविधियाँ जारी रहीं । श्यामजी कृष्ण वर्मा ने लंदन में 'इण्डियन होमरूल सोसइटी और 'Indian Society' की स्थापना की जो क्रांतिकारियों का केन्द्र बन गई । वी० डी० सावरकर ने श्री वर्मा से मिलकर महाराष्ट्र के क्रांतिकारियों के लिए कुछ विदेशी अस्त्र भेजे । अंगरेज सरकार ने वीर सावरकर के बड़े भाई गणेश सावरकर को कालापानी की सजा दी । अमृतसर के एक विद्यार्थी

मदन लाल धींगड़ा ने, जो उस समय लंदन में शिक्षा प्राप्त कर रहा था, भारत मन्त्री ए० डी० सी० कर्जन वायली को गोली मार दी क्योंकि गणेश सावरकर को दण्ड दिलाने में उसका हाथ था । 1910 ई० में वीर सावरकर को extradite कर दिया गया । लाला हरदयाल और मोहन सिंह माकना ने अमरीका और कनाडा के भारतीयों को संगठित कर गदर पार्टी की नींव रखी जिसका उद्देश्य भारत में क्रांति लाना तथा भारत को अंगरेजों से मुक्त कराना था ।

पेरिस तथा जेनेवा से भी क्रांतिकारी कार्य चलते रहे । Madam Cama ने जेनेवा से Bande Matram पत्रिका निकाली ।

रास बिहारी बोस तथा सचीन सान्याल ने गदर पार्टी से लौटे हुए लोगों की सहायता से, जो Komagata Maru घटना से बहुत ही उत्तेजित थे, फोर्ट-विलियम तथा फिरोजपुर, लाहौर और रावलपिण्डी की छावनियों में विद्रोह कराने की योजना बनाई थी पर यह असफल हो गया । 1915 ई० में सिंगापुर में सिपाही विद्रोह हुआ । बर्लिन से भारतीय क्रांतिकारियों को सहायता भेजने का प्रयास किया गया था । वहाँ 1915 ई० में Indian Independence Committee की स्थापना की गयी थी । 1915 में ही महेन्द्र प्रताप, वरकतुल्ला और अवेदुल्ला सिन्धी ने काबुल में "Provisional Government of Free India" की स्थापना की । 1915 ई० में भारतीयों के हाथ से एक भयंकर विद्रोह का मौका निकल गया । प्रथम विश्व युद्ध के दौरान जब अंगरेजों की स्थिति खराब थी तब रासबिहारी बोस, सचीन सान्याल, करतार सिंह, पिंगले इत्यादि की विद्रोह की योजना देशद्रोहिता के कारण असफल रह गयी । प्रथम विश्वयुद्ध के बाद गाँधीजी के राजनीतिक रंगमंच पर आने के बाद भी क्रांतिकारियों की गतिविधियाँ जारी रहीं और अनेक घटनाएँ भी घटीं लेकिन राष्ट्रीय आन्दोलन में गाँधीजी के पदार्पण के साथ एक नया अध्याय शुरू हो गया ।

उग्रपंथी क्रांतिकारी आन्दोलन का महत्व–यद्यपि उग्रपंथी क्रांतिकारी आन्दोलन सफल नहीं हो सका और आजादी की प्राप्ति के लिए उनके बलिदान को बहुत कम ही याद किया जाता है फिर भी क्रांतिकारी आंदोलन भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष के इतिहास में एक महत्वपूर्ण अध्याय है ।

क्रांतिकारियों ने विदेशी शासकों को यह स्पष्ट चेतावनी दी कि पशुबल पर आधारित साम्राज्य टिक नहीं सकेगा । शासित जनता उनके अत्याचार को बर्दास्त नहीं करेगी और ईंट का जवाब पत्थर से देगी । ब्रिटिश सरकार को एक सबक मिला और राष्ट्रीय आंदोलन में यदि आतंकवादी न होते तो शायद अंगरेजों का अत्याचार और भी भयंकर होता ।

क्रांतिकारियों ने जनता में क्रांतिकारी चेतना उत्पन्न की । कांग्रेस में वामपंथी धारा क्रांतिकारी आन्दोलन की ही उपज मानी जाती है । पूरे देश में क्रांतिकारियों ने एक लहर पैदा कर दी थी । उनकी चर्चा गाँव-गाँव में होती थी ।

जहाँ तक त्याग ओर बलिदान का प्रश्न है तो उनके त्याग और आत्म-बलिदान की समता कोई नहीं कर सकता । उन्होंने यदि अन्याय और अत्याचार का बदला हिंसा द्वारा लिया तो उसे अनैतिक नहीं कहा जा सकता है । उन्होंने जो भी कार्य किये वे स्वार्थ-सिद्धि की भावना से नहीं किये बल्कि देश-सेवा की भावना से किये । उन्होंने अपने खून से देश की सेवा की और वे मौत से कभी नहीं घबड़ाये । उनके बलिदान की कहानियाँ सुनकर आनेवाली पीढ़ी बहुत अधिक प्रभावित हुई । क्रांतिकारियों ने फांसी के तख्ते पर चढ़ते समय जो हिम्मत और प्रसन्नता दिखाई ऐसे उदाहरण संसार में विरले हैं । स्वतन्त्रता आंदोलन के इतिहास में उनका नाम सुनहरे अक्षरों में लिखा जाना चाहिए । सुमित सरकार ने अपनी पुस्तक Modern India में आतंकवादियों की चर्चा करते हुए लिखा है: उनके कार्यों से ब्रिटिश प्राय: बहुत अधिक भयभीत थे । प्राण का विसर्जन करने वाली वीरता का पूर्ण स्वतन्त्रता के लिए अभूतपूर्व प्रदर्शन और विश्व के अनेक देशों के साथ उनके संबंध से विचारधाराओं के क्षेत्र में महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा । उनकी वीरता शिक्षित तथा अशिक्षित, दोनों की प्रशंसा का विषय बनी । खुदीराम के बलिदान की कहानी की चर्चा अभी भी बंगाल के निचले वर्ग तक के लोगों के द्वारा की जाती है ।

❋❋❋

भारतीय स्वतंन्त्रता आंदोलन (1905 से 1919)

विश्व के इतिहास में राष्ट्रीयता का उदय मध्य युग की समाप्ति पर हुआ । जिन सामाजिक और आर्थिक शक्तियों के कारण सामंतवाद की समाप्ति हुई थी, उन्हीं के परिणामस्वरूप राष्ट्रीयता का उदय हुआ । राष्ट्र-राज्यों की निश्चित सीमाएँ थीं । इन सीमाओं के लिए एक-से-एक कानून थे । समस्त प्रजा एक राजीनीतिक, सामाजिक और आर्थिक पद्धति के अन्दर रहती थी और उन सबकी महत्वाकांक्षाएँ भी एक-सी थीं । नये राज्यों के निर्माण में मध्यम वर्ग की जनता ने प्रमुख रूप से भाग लिया । यूरोप के अनेक देशों जैसे इटली और जर्मनी में राष्ट्रीयता का उदय 19वीं सदी में हुआ । सन् 1789 ई० की फ्रांस की क्रांति ने राष्ट्रीयता में एक नया तत्व जोड़ दिया । इस क्रांति में राष्ट्र का अर्थ उस राज्य में रहने वाली समस्त जनता से लिया गया । इसका यह अर्थ हुआ कि किसी भी राष्ट्र की प्रभुसत्ता जनता में निहित है। इस प्रकार राष्ट्रीयता और लोकतन्त्र दोनों एक-दूसरे से मिल गये ।

भारतीय राष्ट्रीयता का विकास 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ में हुआ । देश के राजनीतिक संगठन, भारत की प्राचीन सामाजिक तथा आर्थिक पद्धति की समाप्ति, आधुनिक वाणिज्य और उद्योगों का प्रारंभ और नए सामाजिक वर्गों ने राष्ट्रीयता की नींव डाली । समाज-सुधार तथा धर्म-सुधार-आन्दोलन राष्ट्रीयता की भावना के प्रारंभ के ही द्योतक थे और इन आन्दोलनों ने राष्ट्रीयता के विकास में बहुत योगदान दिया ।

ब्रिटिश शासन भारतीय समाज के प्राय: सभी वर्गो के हितों के लिए घातक सिद्ध हुआ । अंग्रेजों ने जो नई भूमिकर व्यवस्था स्थापित की थी, उसके कारण किसानों की दशा खराब हो गई । ब्रिटिश सरकार की आर्थिक नीति के कारण भारतीय उद्योगपति दु:खी थे । उदाहरण के लिए सन् 1882 ई० में सूती कपड़े पर से सब आयात-कर हटा लिये गये । इसके कारण भारतीय सूती कपड़ा उद्योग, जिसका विकास अभी प्रारंभ ही हुआ था, चौपट हो गया । शिक्षित जनता के साथ भेद-भाव की नीति बढ़ती जा रही थी, इसलिए उन्हें भी अनेक कष्ट भोगने पड़ रहे थे । भारतीय समाज के प्राय: सभी वर्गों को इस बात की पूर्णरूप से अनुभूति होने लगी कि ब्रिटिश शासन और उनके हित एक नहीं हो सकते । उनकी यह धारणा बन गयी कि ब्रिटिश शासन को समाप्त किए बिना उनके देश का पूर्ण विकास संभव नहीं है । इन सभी कारणों से भारतीय जनता में एक राष्ट्रीयता की भावना बलवती हुई और इस भावना की अभिव्यक्ति राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के संघर्ष में हुई ।

भारतीय जनता में राष्ट्रीय जागरण के अन्य कारण भी थे । जब भारत की निर्धन जनता का शासकों ने शोषण किया तो उनकी आर्थिक दशा पहले से भी खराब हो गई । अनेक दुर्भिक्ष पड़े जिससे ब्रिटिश शासन की लापरवाही के कारण लाखों व्यक्तियों की मृत्यु हो गई । भारत की ब्रिटिश सरकार ने एशिया के अन्य भागों में अपने साम्राज्यवादी उद्देश्यों की पूर्त्ति के लिए भारतीय साधनों का पूर्ण रूप से उपयोग किया । गवर्नर-जनरल को जो ब्रिटेन की सरकार का प्रतिनिधि भी था, सर्वोच्च अधिकार प्राप्त थे । वह केवल ब्रिटेन की संसद के प्रति उत्तरदायी था, जिसके अधिवेशन भारत से हजारों मील दूरी पर ब्रिटेन में होते थे । गवर्नर-जनरल की सहायता के लिए कार्यकारी और विधायी परिषदें थीं, किन्तु उनके सदस्य अधिकतर अंग्रेज थे जिनकी नियुक्ति स्वयं गवर्नर-जनरल करता था । भारत का शासन-भार अधिकतर इंडियन सिविल सर्विस के अधिकारियों के हाथ में था । इनके सदस्य भी अधिकतर अंग्रेज थे । सिद्धान्त रूप से इस सेवा के चुनाव की प्रतियोगिता परीक्षा में भारतीय उम्मीदवार भी बैठ सकते थे, किन्तु इस सेवा में भारतीयों का चुनाव बहुत कठिन था । परीक्षा इंगलैंड में होती थी और बहुत ही थोड़े व्यक्ति इतना व्यय कर सकते थे कि इंगलैंड में जाकर परीक्षा दे सकें ।

राष्ट्रीय आंदोलन का एक अन्य कारण ब्रिटिश सरकार की भेद-भाव की नीति थी । 1857 के विद्रोह से पूर्व

बहुत-से अंग्रेज अधिकारी और अन्य अंग्रेज भारतीयों से सामाजिक स्तर पर मिलना-जुलना नहीं पसन्द करते थे । भारत विद्रोह के पश्चात् वे लोग अपने को उच्च प्रजाति का और भारतीय वस्तु को निम्न-स्तर की और भारतीयों को असभ्य समझने लगे । यूरोप-निवासियों के लिए रेलों में अलग डिब्बे सुरक्षित थे और उनके क्लब थे, जिनमें प्रविष्ट होना भारतीयों के लिए निषिद्ध था । जवाहरलाल नेहरू ने ठीक ही लिखा है–"भारत का एक राष्ट्र के रूप में और भारतीयों का व्यक्तित रूप में निरादर किया गया । उन्हें नीचा दिखाया गया और उनके साथ निन्दनीय व्यवहार किया गया था ।" इस प्रजातिपरक श्रेष्ठता की भावना का स्पष्ट प्रमाण सन् 1883 में इल्बर्ट बिल का पारित न होना है । इस बिल का उद्देश्य भातरीय और यूरोपीय व्यक्तियों के फौजदारी के मुकदमों की सुनवायी सामान्य न्यायालयों में कराना था और उस विशेषाधिकार को समाप्त करना था जो यूरोप-निवासियों को अभी तक प्राप्त था और जिसके अन्तर्गत उनके मुकदमें एक यूरोपीय न्यायाधीश ही सुन सकता था । यूरोपीय जनता ने इस बिल के विरुद्ध आंदोलन किया और भारत सरकार को इस बिल को वापिस लेना पड़ा ।

सन् 1857 के पश्चात् ब्रिटिश सरकार ने बराबर दमन की नीति का अनुसरण किया । सरकार ने कुछ ऐसे अधिनियम बनाए जिनके कारण आंदोलन देशव्यापी हो गया । 1878 ई० का 'वर्नाक्युलर प्रेस ऐक्ट' और 1879 ई० का 'आर्म्स ऐक्ट' ऐसे दो अधिनियम थे । पहले अधिनियम के अन्तर्गत प्रेस पर अनेक कठोर प्रतिबन्ध लगाए गए और दूसरे अधिनियम ने भारतीयों के लिए शस्त्र रखना गैर-कानूनी घोषित कर दिया ।

इस प्रकार, राष्ट्रीय आंदोलन के उदय में अनेक परिस्थितियाँ सहायक हुई । 19वीं सदी के अन्तिम चरण में इस आंदोलन का स्वरूप अखिल भारतीय हो गया । राष्ट्रीय आंदोलन के नेताओं ने प्रारम्भ में भारतीयों के लिए कुछ सुविधाएँ दी जाने की माँग की, किन्तु कुछ वर्षों के पश्चात् ही उनकी माँग 'भारत की पूर्ण स्वतन्त्रता' हो गई । अमरीका का स्वतन्त्रता युद्ध, फ्रांस की क्रांति, इटली के एकीकरण के युद्ध और वाल्तेयर, रूसो, टॉमस पेन और मेजिनी के विचारों ने भारतीय राष्ट्रीयता के नेताओं को प्रेरणा दी । मेजिनी इटली का वह प्रसिद्ध नेता था, जिसने अपने देश के एकीकरण के संघर्ष को अत्यन्त सफलतापूर्वक चलाया था । 20वीं शताब्दी के समाजवाद और अन्तर्राष्ट्रीयता के लेखों एवम् विचारों का भी भारतीय नेताओं पर प्रभाव पड़े । महात्मा गाँधी और जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में लोकतन्त्र, सामाजिक समानता और राष्ट्रीय विकास के लिए संघर्ष स्वतन्त्रता संघर्ष का अभिन्न अंग बन गया ।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अनेक राजनीतिक संस्थाएँ स्थापित की गई । सन् 1871 ई० में ही भारतीयों की कठिनाइयाँ ब्रिटिश सरकार के सामने रखने के लिए बंगाल में 'ब्रिटिश इंडियन एसोशिएशन' नाम की संस्था का संगठन किया गया । सन् 1875 ई० में सुरेन्द्र नाथ बनर्जी ने बंगाल में 'इंडियन एशोसिएशन' की स्थापना की । दादाभाई नौरोजी ने 'बम्बई सभा' की स्थापना की थी । इसके पश्चात् एक अखिल भारतीय संगठन बनाने का प्रयत्न किया गया । सन् 1883 ई० में सुरेन्द्र नाथ बनर्जी ने भारतीय राष्ट्रीय कांफ्रेंस का आयोजन किया । इस संस्था के प्रधान ने कहा था कि राष्ट्रीय संसद की स्थापना की दिशा में यह काँग्रेस का पहला कदम है । सन् 1885 ई० में भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस की स्थापना की गई । काँग्रेस की स्थापना में एक अवकाश प्राप्त असैनिक अधिकारी श्री ए० ओ० ह्यूम का भी प्रमुख स्थान था । जो सूचनाएँ उन्हें मिली थीं, उनके आधार पर उनको विश्वास हो गया था कि निकट भविष्य में एक राष्ट्रीय विद्रोह होने की आशंका है । उनके अनुसार काँग्रेस जनता की दबी हुई भावनाओं एवं विचारों को बाहर निकालने का अवसर प्रदान करने वाली ऐसी संस्था सिद्ध होगी जो सरकार को किसी प्रकार की हानि पहुँचने से बचाए । इसीलिए इसे 'सेफ्टी बाल्व' कहा गया । यदि इन दबी हुई शक्तियों को बाहर निकलने का अवसर न दिया गया तो ये दबी हुई भारतीय भावनाएँ ऐसा रूप धारण कर लेंगी जो ब्रिटिश शासन के लिए घातक सिद्ध होंगी । तत्कालीन गवर्नर-जनरल लॉर्ड डफरिन ने भी काँग्रेस की स्थापना के विचार का स्वागत किया । उनके अनुसार काँग्रेस के द्धारा सरकार को जनमत को जानने का अच्छा अवसर मिल जायगा । किन्तु थोड़े वर्षों में ही काँग्रेस एक क्रांतिकारी संगठन बन गई, जिसका उद्देश्य भारतीय जनता को स्वतन्त्रता दिलाना हो गया ।

काँग्रेस का पहला अधिवेशन श्री व्योमेशचन्द्र बनर्जी के सभापतित्व में बम्बई में हुआ । इसमें भारत के सभी भागों के प्रतिनिधि सम्मिलित हुए । इनमें विभिन्न धर्मों के अनुयायी थे । जिन समस्याओं पर विचार हुआ वे सभी

समस्त भारत के निवासियों की थीं । इन समस्याओं पर विचार करने में प्रतिनिधियों के धर्म, जाति, भाषा या प्रदेश का कोई ध्यान नहीं रखा गया था । इस प्रकार प्रारम्भ से ही काँग्रेस का राष्ट्रीय आंदोलन धर्म-निरपेक्ष और अखिल भारतीय रहा है । इसने भारतीय समाज के प्रत्येक अंग का प्रतिनिधित्व किया है । इसके अधिवेशनों में दादा भाई नौरोजी, बदरुद्दीन तैयबजी, उमेशचनद्र बनर्जी, सुब्रह्मण्यम् अय्यर, विजय राघवाचार्य, द्रामजी मालाबारी और चन्दावरकर जैसे प्रतिष्ठित भारतीयों ने भाग लिया ।

स्थापना के प्रारम्भिक वर्षों में कांग्रेस ने नरम दलीय कार्यक्रम अपनाया । काँग्रेस के प्रथम अध्यक्ष उमेशचन्द्र बनर्जी ने कहा था कि कांग्रेस का उद्देश्य "राष्ट्रीय विकास में लगे कार्यकर्त्ताओं को एक दूसरे से परिचित कराना और जाति, भाषा, सामाजिक और धार्मिक संस्थाओं में विभिन्नता होते हुए भी भारतीय जनता को एक समान राजनीतिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए संगठित करना है ।" कांग्रेस का अधिवेशन वर्ष में एक बार होता था और यह सरकार के विचारार्थ प्रतिवर्ष कुछ प्रस्ताव पारित करती थी । इन अधिवेशनों में कांग्रेस ने देश की स्वतन्त्रता की मांग नहीं की । उसकी मांग थी कि राजनीतिक संस्थओं में जनता के प्रतिनिधियों को भाग लेने का अधिकार होना चाहिए । उसने मांग की कि कार्यकारी और विधायी परिषदों में जनता के चुने हुए प्रतिनिधि भाग लें । इण्डियन सिविल सर्विस की परीक्षा भारत में हो, परीक्षा में बैठने वालों की निम्नतम आयु बढ़ाई जाए, सैनिक व्यय में कमी की जाए, शिक्षा का प्रचार किया जाए, भारत का औद्योगिक विकास किया जाए, किसानों को साहूकारों से मुक्ति दिलाई जाए और आर्म्स ऐक्ट में संशोधन किया जाए ।

काँग्रेस के तत्कालीन नेताओं, जैसे सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, महादेव गोविन्द रानाडे, गोपाल कृष्ण गोखले, रमेश चन्द्र दत्त और फिरोज शाह मेहता आदि को यह विश्वास था कि उनकी मांगें पूर्णतया न्यायोचित हैं और यदि ब्रिटिश सरकार को इस बात का विश्वास हो जाए कि वे उचित हैं तो वह उन्हें अवश्य स्वीकार कर लेगी । वे ब्रिटिश सरकार के साथ सहयोग करना चाहते थे, उससे अपना संबंध तोड़ना नहीं । उदाहरण के लिए सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने कहा था कि हम "संबंध-विच्छेद करना नहीं चाहते, हम संबंध जोड़ना चाहते हैं । हम उस बड़े साम्राज्य का स्थायी रूप से अभिन्न अंग बनना चाहते हैं जिसने शेष संसार के लिए स्वतन्त्र संस्थाएँ आदर्श रूप में प्रस्तुत की हैं । किन्तु धीरे-धीरे कांग्रेस अधिवेशनों में सरकार की आलोचना बढ़ती गई, पहले की अपेक्षा उग्र माँगें रखी जाने लगीं । काँग्रेस के दूसरे अधिवेशन में वक्ता ने कहा कि स्वशासन तो प्रकृति का मध्यस्थ है और ईश्वर की इच्छा है । प्रत्येक राष्ट्र को अपने भाग्य के निर्णय का अधिकार होना चाहिए । किन्तु हमें अपना शासन स्वयं करने का अधिकार प्राप्त है । नहीं तो क्या हम एक अप्राकृतिक अवस्था में नहीं रह रहे । जब कांगेस में ऐसे उग्र विचारों का विकास हुआ तो सरकार ने कांग्रेस का विरोध करना प्रारम्भ कर दिया । सरकारी अधिकारियों के लिए कांग्रेस के अधिवेशनों में सम्मिलित होना निषिद्ध घोषित कर दिया गया । जब कांग्रेस को 'सेफ्टी वाल्व' बनाने की सरकार की आशा पर पानी फिर गया तो लार्ड डफरिन ने उसका उपहास करते हुए कहा कि 'यह संस्था जनता के केवल एक बहुत छोटे भाग का ही प्रतिनिधित्व करती है और हमें इसके प्रस्तावों पर ध्यान देने की आवश्यकता नहीं है ।'

प्रारम्भिक काल में कांग्रेस के सदस्य शिक्षित मध्यम वर्ग के व्यक्ति या भारतीय उद्योगपति थे । जनसाधारण इसके सदस्य न थे । इसकी मांगें भी मुख्य रूप से शिक्षित मध्यम वर्ग या विकासशील भारतीय उद्योगपति के हितों पर आधारित थीं । किन्तु भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के विकास की प्रारम्भिक अवस्था में कांग्रेस ने अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान दिया । इसने राष्ट्रीय एकता पर बल दिया । भारत से ब्रिटेन की प्रतिवर्ष बड़ी मात्रा में धनराशि भेजे जाने की कटु आलोचना की, प्रतिनिधि संस्थाएँ स्थापित करने की माँग की, आर्म्स ऐक्स आदि दमन करने वाले कानूनों की निन्दा की और भारतीय जनता की निर्धनता की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित किया । इन सभी कार्यों से राष्ट्रीय आंदोलन की नींव दृढ़ हुई ।

सरकार ने भारतीय जनता की इन नरमदलीय माँगों को भी ठुकरा दिया । इस कारण कांग्रेस में उग्रवाद का विकास हुआ जिसने इस आन्दोलन को बढ़ाया ।

उग्रवाद का उदय–

उन्नीसवीं सदी के अन्त में एक नई प्रवृत्ति का विकास हुआ, जिसे उग्रवाद कहते हैं । इस नई प्रवृत्ति के कारण राष्ट्रीय आन्दोलन के नेताओं ने सरकार को आवेदन-पत्र भेजने की नीति छोड़ दी और राजनीतिक आन्दोलन के कुछ उग्र तरीके अपनाए । जो माँगें सरकार के सामने रखी गयीं उनका स्वरूप भी उग्र हो गया । कुछ अन्य कारण भी थे, जिनके कारण आन्दोलन का स्वरूप तीव्र हो गया ।

दिसम्बर सन् 1898 ई० में कर्जन नया वायसराय नियुक्त होकर भारत आया । अपने शासन काल में उसने कुछ ऐसे कार्य किए जिसके कारण वह जनता का बहुत अप्रिय हो गया । उसके इन कार्यों के कारण ब्रिटिश शासन का विरोध बढ़ गया । उसने कहा था कि वह कांग्रेस की शांतिपूर्ण मृत्यु लाने में सहायता देगा । किन्तु हुआ इसके विपरीत । अब वह भारत से ब्रिटेन वापस गया, कांग्रेस का राष्ट्रीय आन्दोलन पहले से अधिक शक्तिशाली हो गया था और इस आन्दोलन ने विभिन्न नए रूप धारण कर लिए थे ।

उसका सबसे अधिक अप्रिय कार्य बंगाल का विभाजन था । इस विभाजन का कारण बंगाल के प्रशासन को सुधारना बतलाया गया । किन्तु देश के नेताओं को स्पष्ट पता लग गया कि इसका वास्तविक उद्देश्य जनता में फूट डालना, पूर्वी बंगाल के राज्य में मुसलमानों का बहुमत और पश्चिमी बंगाल को निर्बल बनाना है । किन्तु इस विभाजन के परिणाम ब्रिटिश सरकार की आशा के सर्वथा विपरीत हुए । इसके कारण जनता में ब्रिटिश शासन के विरुद्ध इतना उग्र आन्दोलन हुआ कि सरकार को यह विभाजन रद्द करना पड़ा ।

कुछ अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं ने भी इस उग्र राष्ट्रवाद के विकास में योग दिया । सन् 1905 ई० में जापान ने रूस को पराजित कर दिया । आधुनिक काल में यह एशिया के किसी राष्ट्र की एक यूरोपीय राष्ट्र पर पहली विजय थी । यद्यपि जापान भी साम्राज्यवादी बनता जा रहा था और जापान चीन के कुछ प्रदेशों पर अधिकार करने के लिए यह युद्ध लड़ रहा था किन्तु जापान की रूस के ऊपर विजय से भारतीय राष्ट्रीय नेताओं को ब्रिटेन के विरुद्ध अपने संघर्ष में बहुत प्रोत्साहन मिला । रूस की पराजय के पश्चात् उस देश में सन् 1905 की क्रांति हुई, जिनके विषय में आप पढ़ चुके हैं । इस क्रांति का उद्देश्य जार (Czar) के निरंकुश शासन को उखाड़ फेंकना था, किन्तु इस क्रांति का दमन कर दिया गया । इस क्रांति का भारतीय राष्ट्रीय नेताओं की विचार-धारा पर गहरा प्रभाव पड़ा ।

काँग्रेस में उग्रवाद के नेता बाल गंगाधर तिलक, विपिन चन्द्र पाल तथा लाला लाजपत राय थे । उनको बहुधा लाल-बाल-पाल कहा जाता है । उन्होंने भारतीय जनता में राष्ट्रीय मान और आत्मविश्वास उत्पन्न करने के लिए भारत के गौरवपूर्ण अतीत का चित्र जनता के सामने रखा । तिलक सन् 1890 से ही काँग्रेस में प्रमुख रूप से भाग ले रहे थे । सन् 1897 में उनपर मुकदमा चलाया गया और देशद्रोह फैलाने वाले लेख लिखने और भाषण देने के अपराध में उन्हें 18 महीने के कठोर कारावास का दंड दिया गया । उन्होंने मराठी भाषा में 'केसरी' नाम के पत्र का प्रकाशन आरम्भ किया था । इसके द्वारा वे राष्ट्रीय विचारों का प्रचार करते थे । उन्होंने गणपति और शिवाजी के उत्सवों को फिर से प्रारम्भ किया और इन उत्सवों के द्वारा जनता में राष्ट्रीय भावना जागृत की । उनके अनुसार भागवत-गीता का सच्चा सन्देश कर्म करना था । इसलिए उन्होंने समस्त जनता को कर्म करने का सन्देश दिया । इस काल में उग्रवाद के नेताओं ने जनता में प्राचीन भारतीय संस्कृति के प्रति अभिमान की भावना कूट-कूट कर भर दी । बंगाल में काली देवी की पूजा का विकास हुआ । उग्रवाद के नेताओं ने काँग्रेस के पुराने नेताओं की आलोचना की । पुराने नेता नरमदलीय कहलाते थे क्योंकि पाश्चात्य संस्कृति की प्रशंसा करते थे और उन्हें यह पूर्ण विश्वास था कि ब्रिटिश सरकार भारत के साथ न्याय करेगी ।

उग्रदलीय और नरमदलीय नेताओं के विचारों में बहुत मतभेद था । उन दोनों के राजनीतिक अधिकार प्राप्त करने के साधन भिन्न थे । तिलक ने इस अन्तर को निम्नलिखित वाक्यों में स्पष्ट किया है–"राजनीतिक अधिकारों के लिए हमें संघर्ष करना होगा । नरमदलीय नेता यह समझते हैं कि ब्रिटिश सरकार को सहमत करके यह अधिकार प्राप्त किये जा सकते हैं । हमारा मत है कि जबर्दस्त दबाव डालकर ही ये अधिकार प्राप्त किये जा सकते हैं ।"

लाला लाजपत राय ने कहा था–"राजनीतिक स्वतन्त्रता और राजनीतिक विशेषाधिकारों की तुम्हारी अभिलाषा को तीव्र बनाने के लिए सर्वशक्तिमान ईश्वर की प्रार्थन करना उपयोगी हो सकता है । किन्तु शासन वाले राष्ट्र से याचना करने से यह प्रकट हो गया कि राजनीतिक मामलों में जहाँ एक राष्ट्र के हितों का विरोध होता है वहाँ मानव की श्रेष्ठ बुद्धि की याचना के द्वारा जागृत करना सर्वथा व्यर्थ हैं ।

बायकॉट और स्वदेशी आंदोलन–

बंगाल के विभाजन से देश भर में क्रोध की ज्वाला प्रज्वलित हो उठी । विभाजन के कारण जो उथल-पुथल का वातावरण उत्पन्न हुआ, उसमें बायकॉट और स्वदेशी आंदोलन प्रारम्भ हुआ । स्वदेशी का शाब्दिक अर्थ है अपने देश का । इसका उद्देश्य अपने देश के उद्योगों की उन्नति करना था । स्वदेशी के साथ ब्रिटेन की बनी वस्तुओं का बॉयकाट (बहिष्कार) किया गया । इस प्रकार विदेशी शासन के विरुद्ध जनता की भावना जागृत करने के लिए स्वदेशी और बायकाट शक्तिशाली साधन सिद्ध हुए । इन दोनों आंदोलन ने ब्रिटिश शासन के उस अंग पर चोट की जहाँ चोट करना उसके लिए सबसे अधिक घातक हो सकता था । स्वदेशी के विषय में लाजपत राय ने कहा था –"मैं समझता हूँ कि मेरे देश की मुक्ति इसी से हो सकती है । स्वदेशी आंदोलन से हममें आत्माभिमान, आत्मविश्वास, आत्मनिर्भरता और पुरुषार्थ की भावना जागृत होती है । स्वदेशी आंदोलन से हमें इस बात की शिक्षा लेनी चाहिए कि हम बिना धर्म, रंग या जाति का भेद-भाव किए समस्त भारतीय जनता की अधिक-से-अधिक भलाई के लिए अपनी पूँजी, अपने साधनों, अपने मजदूरों, अपनी शक्ति और अपनी बुद्धि का प्रयोग किस प्रकार कर सकते हैं । इससे धार्मिक और साम्प्रदायिक भिन्नता होते हुए भी हमें संगठन की शिक्षा लेनी चाहिए । मेरा मत है कि संगठित भारत का सामान्य धर्म स्वदेशी होना चाहिए । बायकॉट आंदोलन के विषय में उन्होंने कहा था, बायकॉट का अर्थ यह है कि मुख्य प्रश्न सरकार की प्रतिष्ठा का है और बायकॉट की सीधी चोट सरकार की प्रतिष्ठा की जड़ पर पड़ती है । प्रतिष्ठा नाम की मायावी वस्तु की शक्ति प्राधिकार से आधिक है । हम उस प्रतिष्ठा को बायकॉट आंदोलन के द्वारा नष्ट करना चाहते हैं । हम अपना मुख सरकारी राज भवन से जनता की झोपड़ियों की ओर फेरना चाहते हैं ।"

जिस समय देश में बंग-भंग के विरोध में आंदोलन फैल गया और अपनी चरम सीमा पर था, उसी समय 1906 ई० में कलकत्ते में काँग्रेस का वार्षिक अधिवेशन शुरू हुआ । राष्ट्रीय आंदोलन की बढ़ती हुई प्रगति को ध्यान में रखकर दादाभाई नौरोजी ने काँग्रेस का वह कार्यक्रम स्वीकार किया जिसका उग्रदल वाले समर्थन कर रहे थे । दादा भाई के समर्थन और नेतृत्व के कारण ही नया कार्यक्रम स्वीकार कर लिया गया । नए कार्यक्रम में पहली बार स्वराज का अर्थ वह शासन पद्धति समझा गया जो सभी स्वशासित ब्रिटिश उपनिवेशों में प्रचलित थी । स्वदेशी पर जोर और विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार संघर्ष के प्रमुख साधन समझे गए । काँग्रेस ने राष्ट्रीय शिक्षा को प्रोत्साहन देना भी अपना लक्ष्य घोषित किया ।

स्वदेशी और बॉयकाट आंदोलन समस्त देश में फैल गए । विदेशी वस्तुओं को बेचने वाली दुकानों पर धरना दिया गया । स्वदेशी और बायकॉट आंदोलन में विद्यार्थियों ने प्रमुखता से भाग लिया । सारे देश में सभाएँ की गयीं और समितियाँ बनाई गईं । सरकार ने दमनचक्र चलाया । सभाएँ करना और बंकिमचन्द्र चटर्जी द्वारा रचित राष्ट्रीय गीत 'वन्देमातरम्' का गान निषिद्ध घोषित कर दिया गया । राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लेने वाली शिक्षा संस्थाओं की मान्यता समाप्त कर दी गई । इन्हें अनुदान देना बन्द कर दिया गया । जुलूस पर लाठियों से प्रहार किए गए और जनता के हृदय में आतंक की भावना जमाने के लिए अनेक प्रयत्न किए गए । किन्तु अत्याचार करने के लिए जो भी कार्य किये गये, वे सभी निष्फल हुए । यह लोकप्रिय क्रांति इतनी शक्तिशाली थी कि बहुत-से व्यक्तियों को यह आशा हो गई कि ब्रिटिश शासन शीघ्र ही समाप्त हो जायेगा । इसी समय तिलक ने निम्नलिखित शब्द लिखे थे–"दमन यदि कानूनी है तो इसका शांतिपूर्वक विरोध करना चाहिए, यदि यह गैर-कानूनी है तो गैर-कानूनी ढंग से विरोध करना चाहिए ।" उन्होंने यह नारा बुलंद किया था, 'स्वराज मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और इसे मैं लेकर रहूँगा ।' यह आन्दोलन सन् 1907 में भी चलता रहा । राष्ट्रीय समाचारपत्रों पर मुकदमे चलाए गए, उनके संपादकों और मुद्रकों को सजा दी गई और उनका प्रकाशन बन्द कर दिया गया । अनेक नेताओं को कारावास में डाल दिया गया ।

उसी वर्ष काँग्रेस का सताइसवाँ अधिवेशन सूरत में हुआ । यहाँ नरमदल और उग्रदल के नेताओं में मतभेद हो गया । पिछले वर्ष कलकत्ता अधिवेशन में स्वदेशी और बायकॉट के संबंध में जो प्रस्ताव पारित किये गये थे नरमदल वालों ने उसमें संशोधन करना चाहा । वे कांग्रेस के संविधान में भी एक धारा बढ़ाना चाहते थे कि संवैधानिक उपायों से प्रशासकीय पद्धति में सुधार करके स्वराज्य प्राप्त करना हमारा लक्ष्य है । तिलक ने काँग्रेस का नेतृत्व अपने हाथ में लेने का प्रयत्न किया । इस अधिवेशन में बहुत अव्यवस्था फैल गयी और इसे भंग करना पड़ा । दोनों दलों ने अपनी-अपनी सभाएँ अलग-अलग कीं । काँग्रेस का नेतृत्व नरम दल के हाथ में रहा । उग्रदल वाले सन् 1916 ई० तक अपना कार्यक्रम अलग चलाते रहे । उस वर्ष दोनों ने मिलकर कार्य करने का निश्चय किया ।

इस बीच में सरकार का दमनचक्र चलता रहा । सरकार ने जनता की शांति भंग करने वाली सभाओं को रोकने के लिए 1907 ई० में देशद्रोही सभा अधिनियम (सेडीशस मिटिंग्स ऐक्ट) पारित किया । सन् 1910 ई० में इण्डियन प्रेस ऐक्ट पास हुआ, जिसके अन्तर्गत अधिकारियों को ऐसे समाचार-पत्र सम्पादक को दंड देने के लिए बहुत अधिकार दिए गए जो लोगों को विद्रोह करने के लिए उत्तेजित करने वाले समाचार या लेख छापें । एक सौ वर्ष पुराने कानून के अन्तर्गत सरकार ने बिना मुकदमा चलाए बहुत-से भारतीयों को देश से निर्वासित कर दिया । बहुत से समाचार-पत्रों का प्रकाशन बन्द कर दिया गया और अनेक नेताओं को बन्दी बना लिया गया, या देश से निर्वासित कर दिया गया । तिलक ने अपने समाचार-पत्र 'केसरी' में दो लेख प्रकाशित किये थे । इसके लिए उन्हें छः साल के कारावास का दण्ड देकर देश से बाहर माँडले भेज दिया गया । जनता ने तिलक की गिरफ्तारी पर बहुत रोष प्रकट किया और बम्बई के सूती कपड़े के कारखानों के मजदूरों ने भारत के इतिहास में सबसे पहली बार हड़ताल की ।

इस प्रकार बीसवीं सदी के प्रथम दशक में राष्ट्रीय आन्दोलन ने एक नए चरण में प्रवेश किया । अब इस आन्दोलन में जनता के अधिक व्यक्तियों ने भाग लेना प्रारम्भ किया और अपने सरकार को प्रार्थना पत्र भेजकर ही संतुष्ट न रहे । कुछ स्थानों पर धर्म के साथ संबंध जुड़ जाने के कारण इस आंदोलन का स्वरूप कुछ साम्प्रदायिक हो गया जिससे बहुत हानि हुई ।

मार्ले मिण्टो सुधार–

नरमदलीय राष्ट्रीय नेताओं को संतुष्ट करने के लिए सन् 1909 ई० में सरकार ने मार्ले मिंटो सुधारों की घोषणा की । सन् 1861 ई० में लेजिस्लेटिव कौंसिल में छः गैर-सरकारी सदस्य सम्मिलित कर लिये गये थे । उस परिषद् के हाथ में कोई शक्ति न थी । वह केवल उन विषयों पर विचार करती थी जो उसके विचारार्थ भेजे जाते थे । सरकार जिन भारतीय सदस्यों को मनोनीत करती थी वे अधिकतर राज्यों या राज परिवार के होते थे । सन् 1892 ई० में कौंसिल ऐक्ट के अन्तर्गत केन्द्रीय और प्रांतीय विधान परिषदों के सदस्यों की संख्या बढ़ा दी गई है और व्यापार मंडलों की सिफारिश पर भारतीय सदस्य मनोनीत किए जाने लगे । बंग-भंग आन्दोलन के फलस्वरूप सन् 1909 ई० में मार्ले-मिंटो सुधारों के अन्तर्गत कुछ अन्य परिवर्तन किए गए । सदा की भाँति ये नए सुधार भी बहुत देर से लागू किए गए और वह भी बहुत कम । केन्द्रीय और प्रांतीय विधान परिषदों में सदस्यों की संख्या बढ़ाई गई और पहले से कुछ चुने हुए सदस्य सम्मिलित किए गए । किन्तु इन सदस्यों का चुनाव आम जनता नहीं करती थी । उनका चुनाव जमींदार या व्यापार मंडल करते थे । मुसलमानों के लिए अलग निर्वाचन-क्षेत्र रखे गए । साम्प्रदायिक आधार पर अलग निर्वाचन क्षेत्र बनाने में सरकार ने फूट डाल कर शासन करने की साम्राज्यवादी नीति का अनुसरण किया था । इस प्रकार सरकार ने भारतीय राजनीतिक जीवन में साम्प्रदायिकता को खुल्लम-खुल्ला प्रोत्साहन दिया ।

यह कौंसिल न तो जनता द्वारा चुनी जाती थी और न उसमें वास्तविक शक्ति थी । नरम दल के नेताओं ने यह समझ कर कि 'कुछ प्रगति हुई' इन सुधारों का स्वागत किया किन्तु धर्म के आधार पर अलग निर्वाचन क्षेत्र बनाने की घोर निन्दा की । गरम दल के नेताओं ने इन सुधारों की तीव्र आलोचना की । अनेक मुस्लिम नेताओं ने भी अलग

निर्वाचन क्षेत्र बनाने की निन्दा की । धीरे-धीरे काँग्रेस के नरमदलीय नेताओं को यह अनुभव हुआ कि ये सुधार बहुत अपूर्ण हैं और कुछ अंशों में ये जनता के लिए हानिकारक सिद्ध होंगे । सन् 1909 ई० के काँग्रेस के अधिवेशन में एक प्रतिनिधि ने निम्नलिखित शब्द कहे थे, "हम इन सुधारों का विरोध इसलिए कर रहे हैं कि इससे भारत की समस्त जनता का विभाजन हो जाएगा । यह बात बंगाल के विभाजन से भी अधिक गंभीर है ।"

इन सुधारों का उद्देश्य भारतीयों को स्वशासन देने की दिशा में कदम बढ़ाना नहीं था । सुधारों की यह योजना इंगलैंड की सरकार में भारत-मंत्री मार्ले और कर्जन के पश्चात् नियुक्त किए जाने वाले भारत के गवर्नर जनरल मिंटो ने बनाई थी । मार्ले का विचार भारतीयों को स्वशासन नहीं देना था । उसने स्वयं कहा था कि यदि सुधारों के फलस्वरूप भारत में संसदीय पद्धति स्थापित हो जाए तो मेरा इन सुधारों से कोई सरोकार नहीं है ।

सन् 1911 में भारत की जनता के दबाव के कारण बंगभंग की योजना को समाप्त कर दिया गया ।

जब प्रथम महायुद्ध प्रारम्भ हुआ तो ब्रिटिश सरकार ने भारत को एक युद्धरत देश घोषित किया । ब्रिटेन ने युद्ध में लड़ने के लिए भारतीय जनता तथा भारतीय साधनों का पूर्ण उपयोग किया । भारतीय सैनिकों की संख्या बढ़ा कर 1,50,000 कर दी गई और भारतीयों को अनिवार्य रूप से सेना में भर्ती होने के लिए विवश किया गया । ब्रिटिश सरकार ने करोड़ो रुपये भारत से ले जाकर युद्ध पर खर्च किये । भारतीय सैनिक भी दूर-दूर के अनेक देश में युद्ध करने के लिए भेजे गए । युद्ध काल में राष्ट्रीय आन्दोलन शक्तिशाली हो गया । सरकार ने तिलक को सन् 1914 ई० में जेल से मुक्त कर दिया था और उन्होंने सन् 1916 ई० में होमरूल लीग स्वराज्य संघ की स्थापना की । कुछ ही महीने पश्चात् श्रीमती एनी बेसेण्ट ने एक दूसरी होमरूल लीग की स्थापना की । बाद में जिन्ना भी इस लीग में सम्मिलित हो गए । सन् 1916 ई० में काँग्रेस के लखनऊ अधिवेशन में नरम दल और उग्रदल के नेताओं ने मिलकर कार्य करने का निश्चय किया । लखनऊ में उसी वर्ष उससे भी एक महत्वपूर्ण घटना घटी । काँग्रेस और मुस्लिम लीग में समझौता हो गया । उस समझौते के अनुसार काँग्रेस और लीग ने मिलकर घोषणा की कि कौन्सिल में चुने हुए प्रतिनिधियों का बहुमत हो और उसके अधिकार बढ़ाए जाएँ । वायसराय की कार्यकारिणी परिषद् (Executive Council)में कम-से-कम आधे सदस्य भारतीय हों । काँगेस और मुस्लिम लीग का यह समझौता, जिसे लखनऊ समझौता (Lucknow Pact) कहा जाता है, एक महत्त्वपूर्ण सफलता थी ।

इसी बीच होमरूल अभियान में तीव्रता आई । बहुत-से नरम दल के नेता जैसे मोतीलाल नेहरू और चितरंजन दास भी इस आन्दोलन में सम्मिलित हो गए और उन्होंने स्वराज्य की माँग का समर्थन किया । ब्रिटिश सरकार ने फिर दमन चक्र चलाया । राष्ट्रीय विचारधारा रखने वाले समाचार पत्रों, जैसे-अलहिलाल, कॉमांड और हमदर्द का प्रकाशन बन्द कर दिया गया । एनीबेसेण्ट के समाचार-पत्र 'नयू-इण्डिया' की जमानत जब्त कर ली गई और एनीबेसेण्ट को नजरबन्द कर दिया गया । सरकार के इन कार्यों से जनता में रोष फैल गया । इस दमन नीति के विरोध में चित्तरंजन दास ने निम्नलिखित शब्द कहे थे-मेरा मत है कि मानवता के अवतार को एक ही बार सूली पर नहीं चढ़ाया गया । अत्याचारी और निर्दयी शासक मानवता के विरुद्ध जितने कुकृत्य करते हैं, वे सभी मानवता रूपी ईश्वर के शरीर में गड़ी हुई । कीलें हैं । (अर्थात् ईसा को फाँसी पर चढ़ाने वालों को जो पाप लगा था, वर्त्तमान शासकों या ब्रिटिश सरकार के जनता पर अत्याचार उससे कम पाप वाले नहीं हैं ।)

गाँधीजी सहित अनेक भारतीय नेताओं ने ब्रिटिश सरकार के युद्ध के प्रयत्नों का समर्थन किया था, क्योंकि उन्हें आशा थी कि ब्रिटिश सरकार महयुद्ध की समाप्ति पर भारत को स्वतंत्रता प्रदान कर देगी । युद्ध छिड़ने के पश्चात् ब्रिटेन की सरकार के भारत मन्त्री (Secretary of State for India) ने निम्नलिखित घोषणा की थी :

ब्रिटेन की नीति का लक्ष्य धीरे-धीरे भारत में उत्तरदायी शासन स्थापित करना है ।

इन घोषणा से अनेक भारतीयों को स्वराज्य प्राप्ति की आशा बन्ध गई थी । इसीलिए उन्होंने युद्ध को सफल

बनाने के सरकारी प्रयत्नों में पूर्ण सहयोग दिया । बाद में इस संबंध में गाँधीजी ने कहा कि, "सरकार की हर प्रकार सेवा करने के कारण मेरा यह विश्वास था कि इस सुविधा के आधार पर ब्रिटिश सरकार मेरे देशवासियोंको बराबर का दर्जा दे देगी । युद्ध की समाप्ति पर जिन सुधारों की घोषणा की गई, उनसे सभी को बहुत निराशा हुई, देश में एक नया वातावरण उत्पन्न हो गया । सरकार द्वारा प्रस्तुत सुधारों से जनता में बहुत निराशा हुई । ऐसी घटनाएँ घटीं जिसके कारण राष्ट्रीय आन्दोलन की अभूतपूर्व प्रगति हुई ।

❋❋❋

पाठ-4b

भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन (1919 – 1935)

महायुद्ध की समाप्ति पर राष्ट्रीय आन्दोलन में जन-आन्दोलन का रूप धारण कर लिया । इसके कई कारण थे । इस समय से मोहनदास करमचन्द गाँधी प्रमुख रूप से राष्ट्रीय आन्दोलन का नेतृत्व करने लगे । इंग्लैंड में कानून की शिक्षा प्राप्त करके वे वकालत करने के लिए दक्षिण अफ्रीका चले गए थे । दक्षिण अफ्रीका की सरकार वहाँ जाति-भेद की नीति का अनुसरण करती थी । वहाँ की सरकार के विरुद्ध संघर्ष करके गाँधीजी ने अपने सत्याग्रह के सिद्धान्त का पूर्ण विकास किया । भारत में जब उन्होंने इस सिद्धान्त का प्रयोग राष्ट्रीय आन्दोलन में किया तो उन्होंने भारतीय जनता से ब्रिटिश सरकार के अत्याचार के विरुद्ध अहिंसात्मक प्रतिरोध करने का आग्रह किया । इसके फलस्वरूप लाखों व्यक्ति इस संघर्श में सम्मिलित हो गए । गाँधीजी के नेतृत्व में शक्तिशाली जन आन्दोलन का प्रारम्भ हुआ । इन आन्दोलनों में सरकार के कानूनों को भंग किया गया । जनता ने शांतिपूर्ण प्रदर्शन किए, न्यायलयों का बायकॉट किया, हड़तालें कीं, शिक्षा संस्थाओं का बायकॉट किया । शराब और विदेशी वस्तुएँ बेचने वाली दुकानों पर धरना दिया गया,सरकार को कर नहीं दिए गए और व्यापार ठप्प कर दिये गये । ये सभी कार्य अहिंसात्मक किन्तु क्रान्तिकारी थे । इन कार्यों का गहरा प्रभाव समाज के सभी वर्गों के लाखों व्यक्तियों पर पड़ा । इसके कारण उनमें वीरता तथा आत्मविश्वास की भावना उत्पन्न हुई । जब सरकारने जनता का दमन किया तो लाखों व्यक्तियों ने सहर्ष इस अत्याचार को सहन किया और निर्भय होकर अपने को गिरफ्तारीयों के लिए प्रस्तुत किया । गाँधीजी के आदेश पर उन्होंने लाठी प्रहार और गोलियों की बौछार सहर्ष सहे । गाँधीजी एक तपस्वी की भाँति सादा जीवन बिताते थे और जन साधारण से ऐसी भाषा में बात करते थे जिसे प्रत्येक व्यक्ति समझ सकता था । इन कारणों से भारत की जनता उन्हें महात्मा गाँधी कहने लगी ।

गाँधीजी ने समाज-सुधार को राष्ट्रीय आन्दोलन के कार्यक्रम का एक अंग बना दिया । समाज सुधार के क्षेत्र में उनकी सबसे बड़ी सफलता अस्पृश्यता की अमानुषिकता के विरुद्ध अभियान था । अस्पृश्यता के कारण लाखों भारतीयों को पशुओं जैसा पतित जीवन बिताना पड़ता था । उनकी एक अन्य सफलता घरेलू उद्योग का विकास था । उन्होंने अनुभव किया कि ग्रामीण जनता के कष्टों की मुक्ति चरखे के द्वारा ही हो सकती है । कांग्रेस ने चरखा के प्रचार को अपने कार्यक्रम में प्रमुख स्थान दिया । चरखे के प्रचार से जनता में राष्ट्रीयता की भावना जागृत हुई और साथ ही लाखों व्यक्तियों को रोजगार मिला । जनता में बड़ी संख्या में ऐसे व्यक्ति तैयार हो गए जो राष्ट्रीय संघर्ष में कूद कर कारावास जाने से नहीं हिचकते थे । चरखे का महत्व इतना बढ़ गया कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने अपने झण्डे में भी इसे प्रमुख स्थान दिया ।

गाँधीजी ने हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए बहुत प्रयत्न किया । उनका विचार था कि सांप्रदायिकता अमानुषिक है और राष्ट्रीयता में बाधक है । उनके नेतृत्व में भारत का राष्ट्रीयता आंदोलन पूर्णतया असांप्रदायिक रहा और भारत की जनता ने स्वतन्त्रता-संघर्ष में बहुत प्रगति की ।

महायुद्ध के परिणाम और दमन का चक्र–

राष्ट्रीय आंदोलन में जन-साधारण के भाग लेने का एक प्रमुख कारण गाँधीजी का नेतृत्व तो था ही, साथ ही इसके कई अन्य कारण भी थे । भारत सरकार ने युद्ध पर बहुत धन व्यय किया, इससे भारतीयों की आर्थिक दशा पहले से भी अधिक खराब हो गई । इनफ्लुएंजा रोग के व्यापक रूप से फैलने से बहुत-से मनुष्यों को अपनी जान खोनी पड़ी । महायुद्ध की समाप्ति पर संसार के अनेक देशों में राष्ट्रीयता की भावना बलवती हो गई । महायुद्ध के कारण यूरोप के तीन देशों के निरंकुश शासन की समाप्ति हो गयी । जर्मनी में होटनजोलर्न वंश, आस्ट्रिया में हैप्सवर्ग वंश और रूस में रोमानो वंश की समाप्ति हो गयी । इन निरंकुश शासन व्यवस्थाओं की समाप्ति का संसार के राजनीतिक वातावरण पर अच्छा प्रभाव पड़ा । रूस की क्रांति के फलस्वरूप उस देश में समाजवाद का विकास हुआ और सोवियत समाजवादी गणतन्त्र संघ (U. S. S. R.) में एशिया के अनेक भाग सम्मिलित हुए । सोवियत सरकार ने अधीनस्थ राष्ट्रों को पूर्ण स्वतन्त्रता देने की घोषणा की और जार की सरकार ने अपनी साम्राज्यवादी नीति का अनुसरण करके एशिया के जिन प्रदेशों पर अधिकार कर लिया था, उन्हें सोवियत सरकार ने स्वतन्त्र कर दिया । भारतीय जनता की चेतना पर भी इन घटनाओं का प्रभाव पड़ा और वह उत्साह से राष्ट्रीय संघर्ष में कूद पड़ी ।

मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधारों की योजना सन् 1919 ई० में गवर्नमेंट ऑफ इंडिया ऐक्ट के रूप में आई । इसमें केन्द्रीय और प्रांतीय सरकारों के अधिकारों का स्पष्ट रूप से अलग-अलग निवेदन किया गया । केन्द्र के विधान मंडल में अब दो सदन रखे गये, जिसमें चुने हुए प्रतिनिधियों का बहुमत रखा गया । किन्तु मतदान का अधिकार बहुत सीमित था और विधानमंडल के हाथ में वास्तविक शक्ति नहीं थी । प्रान्तों में द्वैध शासन व्यवस्था प्रारम्भ की गई । विधान परिषदों में चुने हुए सदस्यों का बहुमत था । मतदान का अधिकार सम्पत्ति रखने वाले व्यक्तियों को ही था और निर्वाचन क्षेत्र सांप्रदायिक आधार पर निर्धारित किए गए । कुछ प्रांतीय विषय विधान परिषदों के अधीन रखे गए किन्तु राज्यपालों को हस्तक्षेप करने के व्यापक अधिकार दिए गए । इस प्रकार विधान मंडल वास्तव में शक्तिहीन थे । ये सुधार भारतीय जनता की स्वराज्य की माँग को संतुष्ट करने की दिशा में सर्वथा निष्फल हुए । कांग्रेस और लीग दोनों ने ही इन सुधारों की कटु आलोचना की । इन सुधारों की घोषणा से जनता में अधिक रोष फैला । अधिकतर दलों ने इन्हें महत्वपूर्ण लेकिन असन्तोष जनक बतलाया ।

महायुद्ध में तुर्की की हार हुई और विजेता राष्ट्रों ने उसका विभाजन कर डाला । इस कारण भारतीया मुसलमानों में बहुत रोष फैला और उनमें ब्रिटिश सरकार के प्रति विरोध की भावना व्यापक रूप से फैल गई ।

ब्रिटिश सरकार ने दमन का चक्र फिर चलाया । सन् 1919 ई० में रॉलेट ऐक्ट पास किया गया । इसके अन्तर्गत सरकार को बिना मुकदमा चलाए किसी भी व्यक्ति को कारागार में डालने का अधिकार मिल गया । रॉलेट ऐक्ट से जन-साधारण में रोष की भावना फैल गई । इसी कारण जालियाँवाला बाग हत्याकांड हुआ । किन्तु इस दमन के कामों से राष्ट्रीय भावना पहले से अधिक तीव्र हो गई ।

जालियाँवाला बाग हत्याकांड :

1919 मार्च में रॉलेट ऐक्ट को लागू किया गया । इन कानूनों के विरुद्ध समस्त देश में विरोधी आंदोलन हुए । 6 अप्रैल को अनेक स्थानों पर हड़ताल और प्रदर्शन हुए । पंजाब में यह विरोधी आंदोलन बहुत शक्तिशाली था । सरकार ने अनेक स्थानों पर जनता पर लाठियों से प्रहार किए और गोली चलाई । 10 अप्रैल को कांग्रेस के दो प्रमुख नेता डा० सत्यपाल और सैफुद्दीन किचलू बंदी बनाकर किसी अज्ञात स्थान को ले जाए गए । इन गिरफ्तारियों पर विरोध प्रकट करने के लिए अमृतसर के जालियाँवाला बाग में 13 अप्रैल को एक सार्वजनिक सभा का आयोजन किया गया । यह छोटा-सा बाग है और चारों और अनेक इमारतों से घिरा है । जनरल डायर अपनी ब्रिटिश सेना की टुकड़ी लेकर इस बाग में घुसा और उसने इस बाग के अकेले द्वारा को बन्द कर दिया । फिर उसने बिना कोई चेतावनी दिए सेना को गोली चलाने का आदेश दिया । यह सभा पूरे तौर से शांतिपूर्ण थी और उसमें उत्तेजित करने वाली कोई घटना नहीं हुई थी । अनेक बालक, स्त्रियाँ और वृद्ध व्यक्ति इस सभा में उपस्थित थे । दस मिनट तक गोली चलाई गई और 1600

गोलियाँ छोड़ी गई । क्योंकि बाहर निकलने का अकेला तंग द्वार बन्द कर दिया गया था, अत: कोई भी व्यक्ति वहाँ से बचकर बाहर न निकल सका । कुछ समय बाद जनरल डायर अपनी सेना सहित बाग से बाहर चला गया । बाग में लगभग 2000 व्यक्ति मारे गए और लगभग 2000 व्यक्ति घायल हुए । घायल व्यक्तियों की किसी ने देखभाल नहीं की। इस अमानुषिक कृत्य के कारण सारे देश में अभूतपूर्व रोष की लहर दोड़ गई ।

डायर के घृणित कार्य से अनेक अंग्रेजों की आत्मा भी विह्वल हो उठी । उन्होंने इस कार्य को पाशविकता का अनोखा उदाहरण और जान-बूझकर किया हुआ हत्याकांड कहकर स्पष्ट शब्दों में इसकी निन्दा की । इस हत्याकांड के तुरंत बाद समस्त पंजाब में मार्शल लॉ लागू कर हर जगह आतंक फैलाया गया । किन्तु इस आतंक के बावजूद राष्ट्रीय आन्दोलन का दमन न हो सका । इस हत्याकांड से डायर जनता में जो आतंक जमाना चाहता था, वह न जम सका । थोड़े दिन बाद खिलाफत और असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ हुए ।

खिलाफत और असहयोग आन्दोलन :

महायुद्ध की समाप्ति पर मित्र राष्ट्रों ने तुर्की के साथ जो अन्याय किया था, उस पर रोष प्रकट करने के लिए मुहम्मद अली और शौकत अली नाम के दो भाइयों ने खिलाफत आन्दोलन का संगठन किया । वस्तुत: इस आन्दोलन के साथ मुस्लिम जनता पूर्ण रूप से राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ कूद पड़ी । कांग्रेस के नेता भी खिलाफत आन्दोलन में सम्मिलित हुए और उन्होंने सारे देश में इसको संगठित करने में मुस्लिम नेताओं की सहायता दी ।

सन् 1920 ई० में कांग्रेस ने अहिंसात्मक असहयोग आंदोलन का कार्यक्रम निर्धारित किया । असहयोग आन्दोलन के मुख्य रूप से उद्देश्य थे-पंजाब में किए गए अत्याचार और तुर्की के प्रति अन्यायपूर्ण नीति का निराकरण एवं स्वराज्य की प्राप्ति । इस नवीन कार्यक्रम को कांग्रेस ने गाँधीजी और जवाहरलाल नेहरू के पिता मोतीलाल नेहरू के नेतृत्व में स्वीकार किया । मोतीलाल इस समय राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रमुख नेता थे । इस आन्दोलन की कई सीढ़ियाँ निश्चित की गई । सबसे पहले पदवी लौटाई जाए, फिर विधान मंडलों, न्यायालयों और शिक्षा संस्थाओं का बहिष्कार किया जाय तथा अन्त में कर न देने का अभियान प्रारम्भ किया जाए । असहयोग के अभियान को सुचारु रूप से चलाने के लिए कांग्रेस ने 1,50,000 स्वयंसेवक भर्ती करने का निश्चय किया । असहयोग आन्दोलन बहुत सफल हुआ । विधान मंडलों के चुनावों में लगभग दो तिहाई मतदाताओं ने मतदान नहीं किया । शिक्षा संस्थाओं में न छात्र पहुँचे न अध्यापक । जामिया मिल्लिया और काशी विद्यापीठ जैसी राष्ट्रीय शिक्षा संस्थाएँ स्थापित की गई । अनेक भारतीयों ने सरकारी नौकरियाँ छोड़ दीं । विदेशी वस्त्रों की होली जलाई गई । देश भर में हड़तालें हुई । मालाबार में मोपला लोगों ने विद्रोह किया । हिन्दुओं और मुसलमानों ने कंधे-से-कंधा मिलाकर इस आन्दोलन में भाग लिया । समस्त देश में भाई चारे का वातावरण दिखाई दिया। सिक्खों ने सरकार के पिट्ठू और भ्रष्ट मठाधीशों को उनकी शक्तिशाली गद्दियों से उतारने के लिए आन्दोलन चलाया । हजारों व्यक्ति स्वयंसेवक बने । जिस समय आन्दोलन चल रहा था उस समय ब्रिटेन के राजकुमार प्रिंस ऑफ वेल्स भारत आए । 17 नवम्बर सन् 1921 ई० को जिस दिन उन्होंने भारत की भूमि पर पैर रखा, जनता ने देशभर में हड़तालें और प्रदर्शन से उनका स्वागत किया । अनेक स्थानों पर पुलिस ने प्रदर्शनकारियों पर गोली चलाई । दमनचक्र चलता रहा और वर्ष के अन्त तक गाँधीजी को छोड़कर देश के सभी प्रमुख नेता बन्दी बना दिए गए । अली भाइयों, मोतीलाल नेहरू, चित्तरंजन दास, जवाहरलाल नेहरू सभी को जेल में ठूँस दिया गया । सन् 1922 ई० के प्रारम्भ में लगभग 10,000 व्यक्ति जेलों में बन्द थे । जिस समय असहयोग आन्दोलन पूरे जोर पर था और ब्रिटिश सरकार का दमनचक्र भी जोरों से चल रहा था, उसी समय दिसम्बर सन् 1921 में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन अहमदाबाद में हुआ। हकीम अजमल खाँ के नेतृत्व में कांग्रेस ने अपना आन्दोलन उस समय तक चालू रखने का निश्चय किया जबतक पंजाब और खिलाफत की शिकायत दूर न हों तथा स्वराज्य की प्राप्ति न हो । इस समय जनता की भावना का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि इस अधिवेशन में बहुत से व्यक्ति केवल स्वराज्य की माँग से सन्तुष्ट न थे, क्योंकि इसका अर्थ उस समय पूर्ण स्वतन्त्रता नहीं समझी जाती थी । एक प्रतिष्ठित राष्ट्रीय नेता और उर्दू के प्रसिद्ध कवि मौलाना हसरत मोहानी ने सुझाव रखा कि स्वराज्य की परिभाषा इस प्रकार की जाय कि इस शब्द का अर्थ 'हर प्रकार के विदेशी नियन्त्रण से मुक्त पूर्ण स्वतन्त्रता समझा जाए ।' इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया गया,

किन्तु इससे यह बात स्पष्ट हो गयी कि भारतीय जनता इस समय तक अपने राजनीतिक अधिकारों के प्रति पूर्णतया जागरूक हो चुकी थी ।

फरवरी सन् 1922 ई० में गाँधीजी ने गुजरात के बारदोली जिले में कर न देने का आन्दोलन प्रारम्भ करने का निश्चय किया । किन्तु उत्तर प्रदेश में चौरी-चौरा नामक स्थान पर जनता ने कुछ हिंसात्मक कार्य किये, उन्होंने एक पुलिस थाने में आग लगा दी जिसमें 22 सिपाही मारे गए। जब यह समाचार गाँधीजी के पास पहुँचा, तो उन्होंने सारे आन्दोलन को स्थगित करने का निश्चय किया । 12 फरवरी, 1922को कांग्रेस की कार्यकारिणी समिति ने इस निश्चय को स्वीकृति दी । उसने चरखा प्रचार, हिन्दू-मुस्लिम एकता और अछूतोद्धार के कार्यक्रमों पर अपनी पूरी शक्ति लगाने का निश्चय किया ।

जब काँग्रेस के उन नेताओं को जो जेलों में थे, यह पता लगा कि आन्दोलन स्थगित कर दिया गया है, तो उन्हें बहुत दुःख हुआ । गाँधीजी को भी गिरफ्तार कर लिया गया और उन्हें छः वर्ष के कारावास का दण्ड दिया गया । किन्तु उन्हें दो वर्ष से कुछ पूर्व ही कारावास से मुक्त कर दिया गया । उन्होंने चरखा-प्रचार, अछूतोद्धार और राष्ट्रीय शिक्षा का अपना रचनात्मक कार्यक्रम प्रारम्भ किया । इन कार्यक्रमों से आन्दोलन को बल मिला । कांग्रेस के एक वर्ग ने मोतीलाल नेहरू और चितरंजन दास के नेतृत्व में स्वराज्य पार्टी बनाई । स्वराज्य पार्टी ने विभिन्न विधानसभाओं के चुनावों में भाग लेने का निश्चय किया । काँग्रेसियों ने इन चुनावों का बहिष्कार किया था । स्वराज्य पार्टी के सदस्यों का चुनाव में भाग लेने का उद्देश्य यह था कि जब तक जनता की माँगें पूरी न होंगी, वे विधानसभाओं को कार्य न करने देंगे । उनके हर काम में रोड़ा अटकायेंगे ।

साम्प्रदायिकता और इसके दुष्परिणाम :

असहयोग आन्दोलन स्थगित करने के पश्चात् एक दुःखद घटना घटी । जनता में सांप्रदायिक तनाव बढ़ गया और अनेक सांप्रदायिक विद्रोह हुए । मुसलमानों ने तबलीग और हिन्दुओं ने शुद्धि का आन्दोलन प्रारम्भ किया जिसके कारण सांप्रदायिक तनाव बढ़ गया । मुसलमानों ने दूसरे धर्म के लोगों को मुसलमान बनाने के लिए तबलीग आन्दोलन चलाया और हिन्दुओं ने दूसरे धर्म को मानने वालों को हिन्दू धर्म में प्रविष्ट करने के लिए शुद्धि का आन्दोलन चलाया । जब राजनीति में साम्प्रदायिकता घुस गई तो ऐसे आन्दोलनों का प्रारम्भ हुआ जिनका उद्देश्य सम्प्रदायों की काल्पनिक या वास्तविक सुविधाओं के विरुद्ध अपने सम्प्रदाय विशेष के हितों की रक्षा करना था ।

किन्तु ये साम्प्रदायिक दल अपने सम्प्रदायों के हितों की रक्षा न कर सके । संप्रदाय विशेष के हितों को समाज के हितों से अलग नहीं किया जा सकता था । इन साम्प्रदायिक दलों का देश की स्वतन्त्रता से कोई सरोकार न था वे तो अपने सम्प्रदाय के उच्च वर्ग के लिए रियायतें चाहते थे । सन् 1920 ई० के बाद लीग कांग्रेस से अलग हो गई और उसने सरकार के सामने अपनी साम्प्रदायिक माँगे रखीं । इस बीच में कई हिन्दू साम्प्रदायिक संगठन भी बन गए । इनमें सबसे महत्वपूर्ण हिन्दू महासभा थी । हिन्दू महासभा ने उन प्रान्तों में जिनमें हिन्दुओं की संख्या कम थी, हिन्दुओं के लिए विशेषाधिकार माँगें । जिसे प्रकार मुसलमानों ने जिन प्रान्तों में उनकी संख्या कम थी, अपने लिए विशेषाधिकार की माँग की ।

इन प्रवृत्तियों के कारण राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रगति में बाधा पड़ी । इसके कारण जनता का ध्यान विदेशी शासन से मुक्त पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लक्ष्य से विचलित हो गया । विभिन्न समुदायों के साम्प्रदायिक तत्त्वों में बहुत-से तत्त्व सामान्य थे । उनकी राजनीतिक गतिविधियों का आधार सम्पूर्ण राष्ट्र नहीं, अपितु उनका अपना संप्रदाय था । उनका जन-साधारण की समस्याओं,जैसे कि निर्धनता, समाज-सुधार और समानता से कोई सरोकार न था । वे अपने संप्रदाय के उच्च वर्ग के अधिकारों और विशेषाधिकारों के लिए चिंतित थे । वे सभी समाज-सुधार के विरुद्ध थे ।

देश के विभिन्न भागों में अनेक साम्प्रदायिक दंगे हुए । ये साम्प्रदायिक दंगे इन सांप्रदायिक संस्थाओं के कार्यों और ब्रिटिश सरकार द्वारा दिए गए प्रोत्साहनों के परिणाम थे । गाँधीजी को एक बार इसके विरोध में और साम्प्रदायिक मेल-जोल बढ़ाने के लिए तीन सप्ताह का अनशन भी करना पड़ा ।

भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन (1935–1947)

असहयोग आन्दोलन की समाप्ति के बाद 1935 के संवैधानिक सुधारों तक का समय नेताओं ने फिर भारतीय आन्दोलन को मजबूत बनाने में लगाया ।

अप्रैल 1936 में कांग्रेस का अधिवेशन जवाहर लाल नेहरू के सभापतित्व में लखनऊ में हुआ । 1934 ई० में कांग्रेस ने भारत का नया संविधान बनाने के लिए वयस्क मतदाताओं द्वारा निर्वाचित सदस्यों की संविधान सभा स्थापित किए जाने की माँग की थी । दिसम्बर 1936 में कांग्रेस का एक अन्य अधिवेशन हुआ । इस अधिवेशन में कांग्रेस ने एक प्रस्ताव पारित करके भारत सरकार के 1935 के ऐक्ट को निम्नलिखित शब्दों में अस्वीकार किया–"यह संविधान जो भारत की जनता पर लादा गया है, जनता की इच्छा के पूर्णतया विरुद्ध है ।" कांग्रेस ने संविधान सभा स्थापित किए जाने की माँग को दोहराया ।

यद्यपि काँग्रेस ने भारत सराकर के इस ऐक्ट की कटु आलोचना की, तथापि उसने यह भी निश्चित किया कि वह प्रांतीय विधानमंडलों के लिए 1937 में होने वाले चुनावों में भाग लेगी । कांग्रेस के अपने चुनाव के घोषणा-पत्र की अन्य प्रमुख बातें यह थीं–कि किसानों को अत्यधिक शोषण से बचाने के लिए कांग्रेस भूमि संबंधी सुधारों का समर्थन करती है । कांग्रेस का मत है कि पुरुषों और स्त्रियों के अधिकार समान होने चाहिए और मजदूरों की दशा में तुरंत सुधार होना चाहिए ।

1937 के चुनावों में एक करोड़ पचपन लाख व्यक्तियों ने मतदान किया । कांग्रेस के अतिरिक्त अन्य कई राजनीतिक दलों ने इस चुनाव में भाग लिया । इन दलों में मुस्लिम लीग भी रही । कुल 1858 स्थान थे, जिसमें से आधे में कुछ कम स्थान सर्वसाधारण के लिए थे, जिनके लिए कोई भी व्यक्ति खड़ा हो सकता था । शेष विभिन्न धार्मिक, व्यापारिक और औद्योगिक वर्गों के लिए सुरक्षित थे । पंजाब और सिंध को छोड़कर सभी प्रान्तों में कांग्रेस के प्रतिनिधियों का बहुमत रहा । छः प्रान्तों में तो कांग्रेस के प्रतिनिधियों की संख्या अन्य सभी दलों के प्रतिनिधियों की सम्मिलित संख्या से अधिक थी । तीन प्रान्तों में उसके प्रतिनिधियों की संख्या किसी भी एक दल के प्रतिनिधियों से अधिक थी । 482 स्थान मुसलमानों के लिए सुरक्षित थे । इसमें से उस मुस्लिम लीग को जो भारत के समस्त मुसलमानों का प्रतिनिधित्व करने का दावा करती थी, कुल 108 स्थान मिले । उत्तर-पश्चिमी सीमांत प्रदेश की जनता में मुसलमानों का बहुमत था, किन्तु वहाँ मुस्लिम लीग को केवल एक स्थान मिला । उत्तर-पश्चिमी सीमांत प्रदेश में राष्ट्रीय आंदोलन का नेतृत्व कर्मठ नेता, खान अब्दुल गफ्फार खाँ कर रहे थे । उनके दल को महत्वपूर्ण सफलताएँ मिलीं । मुस्लिम लीग, जो धर्म के आधार पर राष्ट्रीय आन्दोलन में फूट डालना चाहती थी, इस प्रान्त में बिल्कुल प्रभावहीन रही ।

चुनावों के पश्चात् प्रान्तों में मंत्रिमण्डल बनाने का प्रश्न उठा । राष्ट्रीय आन्दोलन के अनेक नेताओं का कहना था कि कांग्रेस को मंत्रिमण्डल नहीं बनाने चाहिए । किन्तु बहुमत से यह निश्चय हुआ कि जहाँ काँग्रेस का बहुमत है वहाँ उसे मंत्रिमण्डल बनाना चाहिए । वायसराय ने जब यह आश्वासन दे दिया कि गवर्नर शासन प्रबन्ध में हस्तक्षेप नहीं करेंगे तो काँग्रेस ने जुलाई 1937 में सात प्रान्तों में अपने मंत्रिमण्डल बनाए । ये सात प्रान्त उत्तर-पश्चिम सीमान्त प्रदेश, संयुक्त प्रान्त (यू० पी०), मध्य प्रदेश, बिहार, उड़ीसा, मद्रास और बम्बई थे ।

इन मंत्रिमण्डलों ने कार्यभार संभालते ही कुछ महत्त्वपूर्ण कदम उठाए । राजनीतिक बंदियों को कारावास से मुक्त कर दिया और समाचार-पत्रों पर से प्रतिबन्ध हटा दिए गए ।

ब्रिटिश सरकार उस ऐक्ट का कुछ भाग, जो केन्द्रीय शासन से संबन्धित था, लागू करना चाहती थी । 1938 में कांग्रेस के अध्यक्ष सुभाष चन्द्र बोस थे । काँग्रेस ने इस योजना का पूर्ण रूप से विरोध किया और तुरन्त पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए आन्दोलन प्रारम्भ करने का निश्चय किया । यह प्रस्ताव रखा गया कि ब्रिटिश सरकार को चुनौती दी जाय कि या तो वह स्वयं पूर्ण स्वतन्त्रता देने के लिए सहमत हो जाय, नहीं तो उसके विरुद्ध आन्दोलन किया जाएगा । 1939 ई० में कांग्रेस के उग्र विचार वालों और नरम विचार वालों का आपस में विरोध हो गया । कांग्रेस के त्रिपुरा में होने वाले अधिवेशन के अध्यक्ष पद के लिए सुभाष चन्द्र बोस ने नरम दल के उम्मीदवार के विरुद्ध चुनाव में भाग लेने का निश्चय किया । कांग्रेस के इतिहास में पहली बार अध्यक्ष पद के लिए चुनाव के लिए मतदान की आवश्यकता हुई थी। सुभाष चन्द्र बोस अध्यक्ष चुन लिए गए, किन्तु उनसे कहा गया कि वे अपनी कार्यकारिणी समिति का गठन गाँधीजी की सलाह से करें । गाँधीजी और सुभाषचन्द्र बोस में इस विषय में एकमत न हो सका, इसलिए सुभाषचन्द्र बोस ने त्याग-पत्र दे दिया । उन्होंने उग्र विचार वाले सदस्यों का संगठन करने के लिए कांग्रेस में ही 'फॉरबर्ड ब्लॉक' नामक एक अलग दल बनाया ।

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन और द्वितीय विश्व युद्ध :

सितम्बर 1939 में द्वितीय विश्व युद्ध छिड़ गया और ब्रिटिश सरकार ने भारत को युद्धरत देश घोषित कर दिया। इस विषय में सरकार ने जनता से कोई सम्मति नहीं की और भारत को युद्ध में सम्मिलित करने का निश्चय अपने आप ले लिया । ब्रिटिश सरकार सदा से ही अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए भारतीय जनता और भारत के साधनों का उपयोग करती रही थी । ब्रिटिश सरकार ने 19वीं सदी में और प्रथम महायुद्ध के समय जो युद्ध किए थे, उनमें साम्राज्यवादी विस्तार करने के लिए ऐसा ही किया था । किन्तु भारतीय जनता अब जाग उठी थी और वह अपना शोषण बर्दाश्त करने के लिए तैयार न थी ।

जैसे ही युद्ध की घोषणा की गई कांग्रेस ने स्पष्ट शब्दों में युद्ध के प्रति अपना दृष्टिकोण स्पष्ट कर दिया । उसने जर्मनी, इटली और जापान आदि फासिस्ट देशों के एशिया, अफ्रिका और यूरोप के देशों पर किए गए आक्रमणों की निन्दा की और आक्रमणों के शिकार बने देशों के प्रति सहानुभूति प्रकट की । जो ब्रिटेन दावा कर रहा था कि वह सभी देशों की स्वतन्त्रता के लिए युद्ध कर रहा है, उसी ने भारत की जनता की स्वतन्त्रता का अपहरण कर लिया था। इन विदेशी शासकों ने जबरदस्ती भारत को युद्ध में फँसा दिया था । कांग्रेस की कार्यकारिणी समिति ने एक प्रस्ताव में कहा कि अभी हाल में भारत की जनता ने अपनी स्वतन्त्रता प्राप्ति और भारत में स्वतन्त्र लोकतन्त्रीय राज्य स्थापित करने के लिए अनेक कष्ट सहे हैं और अपनी इच्छा से बहुत त्याग किया है एवं उसकी पूर्ण सहानुभूति लोकतंन्त्र तथा स्वतन्त्रता के पक्ष में है । किन्तु भारत उस युद्ध में, जिसके विषय में यह कहा जा रहा है कि वह लोकतन्त्र और स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए लड़ा जा रहा है, अपना सहयोग नहीं दे सकता, क्योंकि उसे स्वतन्त्रता से वंचित किया जा रहा है और अब जो थोड़ी बहुत स्वतन्त्रता उसके पास है, वह भी उससे छीनी जा रही है ।'

गाँधीजी ने व्यक्तिगत सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ किया । जनता के बहुत-से व्यक्तियों ने व्यक्तिगत रूप से कानून भंग किया और गिरफ्तारी के लिए अपने को प्रस्तुत किया । इस प्रकार छः महीने के अन्दर लगभग 20,000 व्यक्ति जेलों में डाल दिए गए । 1941 के अन्त में जब आन्दोलन की प्रगति हो रही थी, जर्मनी ने सोवियत संघ पर और जापान ने संयुक्त राज्य अमरीका की नौ-सेना के अड्डे पर्ल हार्बर पर आक्रमण कर दिया । इसके पश्चात् जापानने दक्षिण पूर्वी एशिया की ओर बढ़ना प्रारम्भ किया । इन घटनाओं के कारण संयुक्त राष्ट्र (United Nation) या मित्र राष्ट्रों का सृजन हुआ जिसका नेतृत्व संयुक्त राज्य अमरीका, सोवियत संघ, फ्रांस और ब्रिटेन ने किया । अनेक राष्ट्रों ने अंटलांटिक घोषणा-पत्र पर हस्ताक्षर किए और बाद में मित्र राष्ट्रों के सभी सदस्यों ने इसे स्वीकार कर लिया । इस घोषणा-पत्र में लिखा था कि वे (संयुक्त राष्ट्र के सदस्य) समस्त देशों की जनता के इस अधिकार का आदर करते हैं कि उन्हें अपने देश की शासन-प्रणाली निश्चित करने का पूर्ण अधिकार है । इन राष्ट्रों की यह इच्छा है कि जिन देशों की प्रभुसत्ता और स्वशासन के अधिकार उनसे जबरदस्ती छीन लिए गए हैं, वे उन्हें वापिस दे दिए जाएँ । किन्तु ब्रिटेन

के प्रधानमंत्री विंस्टन चर्चिल ने घोषणा की कि यह घोषणा-पत्र भारत में लागू नहीं किया जाएगा । इस घोषणा पत्र का संबंध केवल उन यूरोपीय देशों से है, जिनपर जर्मनी ने अधिकार कर लिया है ।

इस समय कांग्रेस के अध्यक्ष मौलाना अबुल कलाम आजाद थे । वे तथा जवाहर लाल नेहरू जैसे अन्य राष्ट्रीय नेता फासिज्म के विरोधी थे; क्योंकि फासिज्म हर देश में जनता की स्वतन्त्रता का विरोधी था । उन्होंने उन देशों की जनता के प्रति सहानुभूति प्रकट की और उनके अधिकारों का समर्थन किया जो फासिस्ट आक्रमणों के शिकार बनचुके थे। भारतीय राष्ट्रीय नेताओं ने मित्र राष्ट्रों के साथ मिलकर फासिस्ट देशों के विरुद्ध लड़ने का वचन दिया । किन्तु यह आश्वासन उसी दशा में कार्यान्वित किया जा सकता था जबकि भारत का शासन यहाँ की जनता के हाथ में हो । ब्रिटेन के अनेक साझी राष्ट्रों ने जो फासिज्म के विरुद्ध थे, ब्रिटिश सरकार पर दबाव डाला कि उसे भारतीय जनता की माँग स्वीकार कर लेनी चाहिए ।

मार्च 1941 में सर स्टेफर्ड क्रिप्स भारतीय नेताओं से विचार-विमर्श करने भारत आए । उन्होंने युद्ध की समाप्ति पर भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य देने का वचन दिया । उन्होंने न तो पूर्ण स्वतन्त्रता देने का वचन दिया और न युद्ध-काल में भारतीय जनता को राष्ट्रीय सरकार बनाने का आश्वासन दिया । अत: कांग्रेस ने इन सुझावों को ठुकरा दिया ।

इसी समय सुभाषचन्द्र बोस ने, जो पहले ही भारत छोड़कर विदेश चले गये थे, वहाँ स्वतन्त्र भारत की सरकार की स्थापना की । जापान की सेना ने जिन भारतीय सैनिकों को बन्दी बना लिया था, उनका संगठन करके सुभाष ने आजाद हिन्द फौज बनाई । इस सेना का उद्देश्य भारत को ब्रिटिश शासन से मुक्त कराना था । किन्तु भारत के राष्ट्रीय नेता तत्कालीन जापानी सरकार को भारतीय जनता का मित्र नहीं समझते थे । वे साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष में जापान को अपना मित्र इसलिए नहीं समझते थे कि जापान ने स्वयं इस समय साम्राज्यवादी नीति अपना रखी थी । किन्तु सुभाष और 'आजाद हिन्द फौज' की गतिविधियों ने भारतीय जनता को अपने कर्त्तव्य के लिए जागरूक किया जिससे वे ब्रिटिश शासन पर अन्तिम चोट करने के लिए संघर्ष में कूद पड़े ।

अगस्त 1942 में गाँधीजी ने 'भारत छोड़ो' का नारा बुलन्द किया । कांग्रेस ने एक प्रस्ताव पारित करके माँग की कि 'भारत के हित और मित्र राष्ट्रों की सफलता के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि भारत में ब्रिटिश शासन तुरन्त समाप्त किया जाय । कांग्रेस ने घोषित किया कि भारत की स्वतन्त्रता के अधिकार को छीनने का किसी को अधिकार नहीं है । यदि ब्रिटिश सरकार भारत में अपना शासन तुरन्त समाप्त नहीं करती, तो कांग्रेस स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए बड़े पैमाने पर सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ कर देगी । जिस दिन कांग्रेस ने यह प्रस्ताव पारित किया, उसके अगले ही दिन उसको गैर-कानूनी संस्था घोषित कर दिया गया और सभी महत्वपूर्ण नेताओं को बन्दी बना लिया गया ।

राष्ट्रीय नेताओं की गिरफ्तारी से सारे देश में रोष फैल गया । भारतीय जनता ने 'भारत छोड़ो' के नारे को ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध, अपने युद्ध का नारा बना लिया। जनता ने स्वयं अनेक स्थानों पर बड़े उत्साह से जुलूस निकाले । अनेक स्थानों पर जनता ने ब्रिटिश शासन की समाप्ति के लिए हिंसात्मक कार्य किए । सरकार ने इस आन्दोलन का बड़ी क्रूरता से दमन करने में पुलिस और सेना का प्रयोग किया । इस आन्दोलन में सैकड़ों भारतीयों की अपनी जान से हाथ धोने पड़े और 70,000 से अधिक व्यक्तियों को पाँच महीने से भी कम समय में बंदी बना लिया गया । सरकार के इस पाशविक अत्याचार के होते हुए भी, जितने समय तक द्वितीय महायुद्ध चला, यह संघर्ष बराबर चलता रहा ।

पाकिस्तान बनाने की माँग :

भारत में कुछ साम्प्रदायिक राजनीतिक दल स्थापित हो चुके थे । इन दलों का संगठन धर्म के आधार पर किया गया था । ये दल अपने-अपने संप्रदायों के हितों की रक्षा करने का दावा करते थे । साम्प्रदायिक दल वास्तव में ब्रिटिश शासकों के हाथ की कठपुतली बन गये थे और स्वतन्त्रता-आन्दोलन में बाधा डाल रहे थे । जिस समय राष्ट्रीय

आन्दोलन जोरों पर था । इन दलों को जनता का समर्थन प्राप्त नहीं हुआ और इनका अस्तित्व प्राय: समाप्त हो गया । 1937 के चुनावों में मुस्लिम लीग की बहुत बुरी तरह से हार हुई । हिन्दू साम्प्रदायिक संस्थाओं की भी यही दशा हुई । किन्तु थोड़े दिन पश्चात् साम्प्रदायिकता की भावना फिर उभर पड़ी । इस समय इसका स्वरूप पहले की अपेक्षा अधिक घिनौना था और इसका भारतीय जनता पर बड़ा घातक प्रभाव पड़ा ।

साम्प्रदायिक संस्थाओं ने अब भारत में दो राष्ट्रों के सिद्धांत का प्रतिपादन किया । इस सिद्धांत के अनुसार जिन्ना के नेतृत्व में मुस्लिम लीग ने दावा किया कि भारत के अन्दर दो राष्ट्र हैं–एक हिन्दू राष्ट्र और दूसरा मुस्लिम राष्ट्र । इस सिद्धांत का आश्रय लेकर जिस राजनीति का अनुसरण किया गया, उससे अनेक दु:खद घटनाएँ हुई और अन्त में देश का बंटवारा हुआ ।

भारतीय जनता का पूरा इतिहास साक्षी है कि यह दो राष्ट्रों का सिद्धांत सर्वथा असत्य है । मध्य युग से हिन्दुओं और मुसलमानों ने मिलकर एक सामान्य संस्कृति का विकास कर लिया था । वे अब एक हो गए थे । 19वीं सदी में 1857 के विद्रोह से पहले, विद्रोह के अन्तर्गत और विद्रोह के पश्चात् भी वे विदेशी शासन से मुक्त होने के लिए एक इकाई के रूप में संघर्ष कर चुके थे । 20वीं सदी में राष्ट्रीय आन्दोलन में जन-साधारण ने भाग लिया । हिन्दुओं और मुसलमानों आदि सभी सम्प्रदायों के व्यक्तियों ने एक इकाई के रूप में अनेक कष्ट सहे । भारतीय आन्दोलन सारे भारत का राष्ट्रीय संघर्ष था जिसमें भारत में रहने वाली सभी जातियों ने भाग लिया । दो राष्ट्रों के इस सिद्धान्त ने अब भारतीय राष्ट्रीयता की आधारशिला पर ही कुठाराघात किया था ।

1940 में मुस्लिम लीग के लाहौर अधिवेशन में पाकिस्तान नामक अलग राज्य बनाने की माँग की गई थी । यह माँग दो राष्ट्रों की माँग पर आधारित थी । मुस्लिम लीग ने माँग की कि "जिन क्षेत्रों में मुस्लिम जनसंख्या हिन्दुओं से अधिक है, जैसे कि उत्तर-पश्चिम भारत में और पूर्वी भारत में, उन्हें मिलाकर स्वतन्त्र राज्य बनाया जाय, जो पूर्णतया स्वाधीन और प्रभुसत्ता सम्पन्न हो ।"

अधिकांश मुसलमानों ने अलग राज्य बनाए जाने की माँग का विरोध किया । कांग्रेस में जो अनेक मुसलमान थे उन्होंने इसे अलग होने की मांग का विरोध किया । मौलाना अबुल कलाम आजाद जैसे अनेक राष्ट्रीय नेता थे, जिन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन में प्रमुखता से भाग लिया था । उन्होंने अलग राज्य बनाये जाने की माँग का दृढ़ता से विरोध किया । उन्होंने कहा कि यह माँग राष्ट्रीयता की भावना के विरुद्ध है और मुसलमानों तथा भारत की जनता के हित में नहीं है । मुसलमानों के ही कई संगठन थे, जिन्होंने अलग राज्य बनाने की माँग का विरोध किया और इन साम्प्रदायिक प्रवृत्तियों के विरुद्ध तथा भारतीय जनता की स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष किया । इनमें सबसे प्रमुख खुदाई खिदमतगार थे, इनके कर्मठ नेता खान अब्दुल गफ्फार खाँ थे । वे सरहदी (सीमान्त) गाँधी के नाम से प्रसिद्ध हैं । इसी प्रकार के अन्य दल बलुचिस्तान की 'वतन पार्टी', 'ऑल इण्डिया मोमिन कांग्रेस', 'अहरार पार्टी', 'ऑल इण्डिया शिया पोलिटिकल कांग्रेस, और 'आजाद मुस्लिम कांग्रेस' थे । इन संगठनों और कांग्रेस ने असंख्य भारतीय मुसलमानों का राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के संघर्ष में नेतृत्व किया ।

ब्रिटिश सरकार ने मुस्लिम लीग को प्रोत्साहन दिया और कहा कि वह अलग राज्य बनाने की अपनी माँग के लिए सरकार पर दबाब डालें । इस प्रकार मुस्लिम लीग ने ब्रिटिश साम्राज्य के स्वामियों को प्रसन्न करने के लिए उनके हाथ में कठपुतली की भाँति आचरण किया । इससे स्वतन्त्रता आन्दोलन में बाधा पड़ी और वह आन्दोलन निर्बल हुआ । ब्रिटेन ने जब स्वतन्त्रता की माँग की पूर्ण उपेक्षा की तो कांग्रेस की प्रांतीय सरकारों ने त्याग-पत्र दे दिया । उस दिन मुस्लिम लीग ने अपना 'मुक्ति दिवस' मनाया । उसने किसी भी प्रांत की विधानसभा में बहुमत न होने पर भी मन्त्रिमण्डल बनाने का प्रयत्न किया । द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति के दो वर्ष पश्चात् जब ब्रिटिश सरकार को विवश होकर भारत छोड़ना पड़ा, तो मुस्लिम लीग की माँग पूरी कर दी गई और देश का बँटवारा हो गया ।

द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् राष्ट्रीय उभार :

संयुक्त राष्ट्र के सदस्य राष्ट्रों ने स्वतन्त्रता और लोकतन्त्र की रक्षा करने के नाम पर द्वितीय महायुद्ध किया था।

इस संघर्ष से अनेक देशों की जनता में फासिज्म के विरुद्ध स्वतन्त्रता और लोकतन्त्र की भावना जाग्रत हो गई थी । युद्ध की समाप्ति पर साम्राज्यवादी देशों के उपनिवेशों की जनता में स्वतन्त्रता के लिए आशातीत उभार आया । एशिया और अफ्रीका के देशों की जनता ने स्वतन्त्रता के लिए किए जाने वाले अपने संघर्ष को तीव्र कर दिया । संसार का समस्त वातवारण अब परिवर्तित हो गया था । स्वतन्त्रता के इस विश्वव्यापी संघर्ष से भारतीय जनता के संघर्ष को अपूर्व शक्ति मिली और वह उच्चतम शिखर पर पहुँच गया ।

युद्ध के कारण दुनिया का नक्शा ही बदल गया था । ब्रिटेन, फ्रांस, हालैंड आदि पुराने साम्राज्यवादी देश युद्ध में निर्बल हो गये थे । अब उनमें शक्तिशाली राष्ट्रीय आन्दोलन का सामना करने की शक्ति नहीं रह गई थी । ब्रिटेन की जो शक्ति सैकड़ों वर्षो से चली आ रही थी, वह अब नहीं रह गई थी । ब्रिटेन का आधिपत्य सदा के लिए समाप्त हो गया । सोवियत संघ, जिसको युद्ध में बहुत अधिक क्षति हुई थी, युद्ध के पश्चात् पहले से अधिक शक्तिशाली हो गया । यूरोप के अनेक देश जिन पर युद्ध के समय जर्मनी ने अधिकार कर लिया था, हिटलर की पराजय के पश्चात् समाजवादी हो गये । ये देश साम्राज्यवाद के विरुद्ध थे । इस प्रकार युद्ध में जहाँ फॉसिज्म का नाश हुआ, वहाँ साम्राज्यवाद को भी गहरी चोट लगी ।

ब्रिटेन के चुनावों में कंजरवेटिव दल की करारी हार हुई । यह दल भारत की स्वतन्त्रता का विरोध करता था । युद्ध के समय ब्रिटिश प्रधानमंत्री विंस्टन चर्चिल कहते थे कि मैं यह सहन नहीं कर सकता कि मेरी सरकार के शासनकाल में ब्रिटिश साम्राज्य की समाप्ति हो जाए । अब वे प्रधानमंत्री नहीं रहे । लॉर्ड एटली के नेतृत्व में लेबर पार्टी की सरकार बनी । लेबर पार्टी में ऐसे अनेक सदस्य थे जो भारत में ब्रिटिश शासन की समाप्ति के पक्ष में थे । इस प्रकार अब वे परिस्थितियाँ उत्पन्न हो गईं, जिनमें भारत में साम्राज्यवाद का अन्त संभव हो गया ।

भारत में इस समय ब्रिटिश शासन का विरोध अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया था । युद्ध के कारण भारतीयों को अनेक कष्ट सहन करने पड़े थे । 1943 में बंगाल में भयानक अकाल पड़ा था । ब्रिटिश सरकार ने अकाल पीड़ितों के साथ लेशमात्र की सहानुभूति नहीं दिखाई । इस दुर्भिक्ष में लाखों की मृत्यु हो गई । युद्ध की समाप्ति पर जनता के हृदय में सरकार के प्रति जो रोष अब तक दबा हुआ था, वह विदेशी शासन पर अन्तिम चोट करने के लिए सहसा फूट पड़ा ।

नवम्बर 1945 में आजाद हिन्द फौज के तीन अफसरों पर दिल्ली के लाल किले में मुकदमा चलाया गया । उन पर सम्राट अर्थात् ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध षड्यन्त्र करने का आरोप लगाया गया । हमारे राष्ट्रीय नेताओं ने आजाद हिन्द फौज के अफसरों को बचाने के लिए उनपर चलाये गये मुकदमों की पैरवी की, किन्तु उन्हें आजन्म देश-निर्वासन का दण्ड दिया गया, उसके कारण देश भर में व्यापक विद्रोह हुए । भारतीय नौ सेना के हजारों पदाधिकारियों ने विद्रोह किया । विद्रोहियों ने ब्रिटिश साम्राज्य के झण्डे यूनियन जैक को जहाज पर से हटा दिया और उसके स्थान पर भारतीय झंडे को फहरा दिया । समस्त देश में प्रदर्शन हुए और हड़तालें की गई । ब्रिटिश सरकार को यह बिल्कुल स्पष्ट हो गया कि भारत में उसका शासन अब अधिक दिन नहीं रह सकेगा । अब भारतीयों को परतन्त्रता की बेड़ियों में बाँधे रखना असम्भव हो गया ।

स्वतन्त्रता की प्राप्ति, 1947 :

फरवरी 1946 में ब्रिटिश सरकार ने भारतीय नेताओं से विचार-विमर्श करने के लिए मंत्रियों का एक शिष्टमंडल (Cabinet Mission) भारत भेजा । ब्रिटेन के प्रधानमंत्री ने घोषणा की कि हमारा विचार शीघ्र ही भारत को स्वतन्त्रता देने का है । इस शिष्टमंडल ने सुझाव दिया कि भारत में एक संघ की स्थापना की जाय, जिसमें भारतीय प्रान्तों के चार क्षेत्र (Zone) बनाए जाएँ । विदेश नीति, सुरक्षा और संचार संबंधी मामलों को छोड़कर अन्य सभी विषयों में प्रत्येक को पूर्ण स्वतन्त्रता दी जाय और प्रत्येक क्षेत्र का अपना अलग संविधान रहे । इसलिए मंडल ने यह भी सुझाव दिया कि एक संविधान सभा बनाई जाय । इसके सदस्यों का चुनाव जनता द्वारा प्रत्यक्ष न हो, अपितु साम्प्रदायिक निर्वाचन क्षेत्रों के आधार पर प्रान्तीय धारा सभाएँ करें । देशी राज्यों के प्रतिनिधियों को मनोनीत करने का अधिकार उनके शासकों को

दिया गया था । मई, 1946 में सरकार ने साम्प्रदायिक वर्गों के आधार पर ही अन्तरिम सरकार बनाने का सुझाव रखा । इसमें कांग्रेस को हिन्दुओं का प्रतिनिधि मनोनीत करने का अधिकार दिया गया और इनकी संख्या कार्यकारिणी में कुल सदस्यों का 40 प्रतिशत रखा गया । मुस्लिम लीग को 40 प्रतिशत मुसलमानों के प्रतिनिधि मनोनीत करने का अधिकार दिया गया। 20 प्रतिशत स्थान अन्य धार्मिक समुदायों के लिए सुरक्षित रखे गये । इस प्रकार एक बार फिर देश में फूट डालने का प्रयत्न किया गया । कांग्रेस ने शिष्टमंडल के संविधान सभा स्थापित करने के सुझाव को स्वीकार कर लिया। पहले कांग्रेस ने आग्रह किया था कि संविधान सभा के सदस्यों का चुनाव वयस्क मताधिकार के आधार पर जनता द्वारा होना चाहिए । किन्तु शीघ्रातिशीघ्र स्वतन्त्रता-प्राप्ति के उद्देश्य से शिष्ट-मंडल के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया गया । कांग्रेस ने शिष्ट मंडल द्वारा प्रस्तावित अन्तरिम सरकार में भाग लेना स्वीकार किया । मुस्लिम लीग ने संविधान सभा की कार्यवाही में भाग लेना स्वीकार नहीं किया ।

6 जून, 1946 को कांग्रेस अन्तरिम सरकार में सम्मिलित होने के लिए तैयार हो गई । लीग ने इसका बायकॉट किया । अगस्त, 1946 में अन्तरिम सरकार बनाई गई । इस अन्तरिम सरकार में जवाहरलाल नेहरू, अबुल कलाम आज़ाद, बल्लभ भाई पटेल और आसफ अली आदि राष्ट्रीय नेता सम्मिलित हुए ।

जून, 1946 में ही संविधान सभा के चुनाव समाप्त हो गए थे । कांग्रेस ने 192, मुस्लिम लीग ने 70 कम्युनिस्ट पार्टी ने 1 और अन्य वर्गों ने 11 स्थान जीते थे । देशी राज्यों के शासकों और मुस्लिम लीग ने संविधान सभा के अधिवेशनों में भाग नहीं लिया । मुस्लिम लीग ने बराबर पाकिस्तान को अलग राज्य बनाने की माँग को दोहराया । जब देशी राज्यों के शासक संविधान का बायकॉट कर रहे थे उस समय इन राज्यों की जनता अपने राज्यों को संगठित भारत में मिलाने के लिए आन्दोलन चला रही थी ।

1947 के आरम्भ में लॉर्ड माउन्टबेटन को भारत का नया वायसराय बनाया गया और ब्रिटिश सरकार ने घोषणा की कि वह जून, 1948 से पहले ही भारतीयों को शासन सौंप देगी । जून 1947 में माउंटबेटन ने भारत को दो स्वतंत्र राज्य-भारत संघ और पाकिस्तान बनाने की योजना प्रस्तुत की । देशी राज्यों को अपना भविष्य स्वयं निश्चित करने का अधिकार दिया गया । दोनों राज्यों की सीमा निर्धारित करने का कार्य तुरन्त प्रारम्भ कर दिया गया । देश का विभाजन हो गया और भारत तथा पाकिस्तान के दो राज्यों को सत्ता दे दी गई । पाकिस्तान में पश्चिमी पंजाब, पूर्वी बंगाल, सिंध और उत्तर-पश्चिम सीमांत प्रदेश सम्मिलित किए गए ।

इस प्रकार 15 अगस्त 1947 को भारत स्वतंत्र हुआ । दुर्भाग्यवश भारतीय जनता की स्वतंत्रता के इस वैभवपूर्ण संघर्ष की विजय उन दूषित घटनाओं से कलंकित हो गई जो स्वतंत्रता प्राप्ति के ठीक पहले और तुरन्त बाद इस देश में घटीं । साम्प्रदायिक दंगे हुए जिनमें लाखों लोगों के घर उजड़ गए और हजारों व्यक्ति मारे गये । किन्तु दोनों सम्प्रदायों के अनेक लोगों ने साम्प्रदायिक शांति बनाये रखने और अपने सम्प्रदाय के हठधर्मी व्यक्तियों के आक्रमणों से दूसरे सम्प्रदाय के व्यक्तियों को बचाने के लिए अपना जीवन बलिदान कर दिया । ये वे वीर थे जिन्होंने शक्तिशाली साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष किया था और अब साम्प्रदायिक घृणा के उस दानव के विरुद्ध संघर्ष किया जो उत्तर भारत के कस्बों और नगरों में 1947 के उन दिनों में बड़े पैमाने पर अपने संहार को कुकृत्य कर रहा था ।

नये भारत का निर्माण–

संविधान सभा ने स्वतन्त्र भारत का संविधान बनाने का कार्य आरम्भ किया । इसने अपना कार्य 9 दिसम्बर, 1946 को प्रारम्भ करके 26 नवम्बर, 1949 को समाप्त किया । प्रारूप-समिति के अध्यक्ष डा० भीमराव अम्बेदकर थे । भारत का यह संविधान 26 जनवरी 1950 को लागू किया गया । तभी से भारत को एक गणतंत्र राज्य घोषित किया गया। प्रतिवर्ष हम 15 अगस्त को स्वतन्त्रता दिवस और 26 जनवरी को गणतन्त्र दिवस मनाते हैं ।

जवाहरलाल नेहरू ने 13 दिसम्बर, 1956 को संविधान सभा के उद्देश्यों संबंधी प्रस्ताव पर भाषण देते हुए संविधान सभा का कर्त्तव्य बतलाया था । संविधान सभा ने श्री नेहरू द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव के अनुसार भारत को स्वतन्त्र, प्रभुसत्ता सम्पन्न गणराज्य घोषित करने का दृढ़ संकल्प किया था । इस प्रस्ताव के द्वारा ब्रिटिश सरकार द्वारा शासित

भारत के प्रांतों, देशी राज्यों और उन सभी प्रदेशों को इस स्वतन्त्र प्रभुता सम्पन्न भारत में सभी जातियों को संविधान सभा के अनुसार सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, पद अवसर और कानूनों के सामने समानता, विचार करने, उनको व्यक्त करने, धार्मिक विश्वास रखने, पूजा करने, व्यवसाय संबधी समुदाय बनाने और कार्य करने की स्वतन्त्रता की गारन्टी दी जाएगी और इस स्वतन्त्रता को प्राप्त करने के लिए पूर्ण प्रयत्न किया जाएगा ।

14 अगस्त, 1947 की मध्यरात्रि को संविधान सभा स्वतन्त्र भारत की पहली संसद बन गई । इस अवसर पर हमारे प्रथम प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू ने ये चिरस्मरणीय शब्द कहे थे, "बहुत दिन हुए हमने अपने भाग्य के विषय में निश्चित किया था। आज यह दिन आया है, जब हम पूर्णतया तो नहीं किन्तु बहुत अंश में अपना वचन पूरा करेंगे । आज ठीक आधी रात के समय जब संसार सो रहा है, भारत में नया जीवन और स्वतन्त्रता जागृत होगी । इतिहास में ऐसे क्षण बहुत ही कम आते हैं जब एक युग की समाप्ति होती है और बहुत दिनों से दबी हुई एक राष्ट्र की आत्मा को भी अपने को व्यक्त करने का अवसर मिलता है । इस महत्वपूर्ण क्षण में यह उचित है कि हम भारत और उसकी जनता की सेवा में अपना जीवन अर्पण करने के प्रण के साथ ही मानव मात्र की सेवा की प्रतिज्ञा करें ।" उन्होंने उन लक्ष्यों और स्वपनों का वर्णन किया जिनको वे क्रियात्मक रूप देना चाहते थे । उन्होंने उस भविष्य का भी वर्णन किया जो 'संकेत देकर हमें बुला रहा है ।' उन्होंने कहा कि 'भविष्य हमारे लिए सुख और विश्राम की वस्तु नहीं । हमें लगातार अथक परिश्रम करना होगा, जिससे कि हम उन प्रतिज्ञाओं को पूरा कर सकें जो हमने पहले की है जिन्हें हम आज फिर दोहरायेंगे । भारत की सेवा का अर्थ है उन लाखों व्यक्तियों की सेवा, जो कष्ट भोग रहे हैं । सेवा का अर्थ है निर्धनता, अज्ञान, रोगों और अवसर की असमानता को समाप्त करना । हमारी पीढ़ी के सबसे महान् व्यक्ति की यह महत्वाकांक्षा रही है कि वह प्रत्येक भारतवासी के आँसू पोंछ सकें । इस लक्ष्य तक चाहे हम न पहुँच सकें किन्तु इस संसार में जब तक आँसू हैं और पीड़ा है, हमारा काम समाप्त नहीं होगा ।

हमें अपने स्वप्नों को साकार करने के लिए कठिन परिश्रम करना होगा । हमारे स्वप्न भारत के लिए तो हैं ही वे समस्त संसार के लिए भी हैं, क्योंकि संसार की सभी जातियों और राष्ट्रों के आजकल एक-दूसरे से घनिष्ठ संबंध हैं, आज कोई भी राष्ट्र पूर्णतया अलग रहने की कल्पना नहीं कर सकता । जैसे शांति के टुकड़े-टुकड़े नहीं किए जा सकते, उसी प्रकार स्वतन्त्रता भी अविभाज्य है । उसी प्रकार इस संसार में सुख और दुःख हैं जिन्हें कोई भी अकेले नहीं भोग सकता क्योंकि विश्व एक है । अब उसे टुकड़ों में बांट कर नहीं रखा जा सकता ।"

उन्होंने संविधान सभा को सफल बनाने के लिए भारत की जनता से अपील की कि, "आत्म विश्वास और श्रद्धा के साथ प्रत्येक भारतीय को इस महान कार्य में सहयोग देना चाहिए । अब छोटी-छोटी बातों पर विध्वंसात्मक आलोचना करने का समय नहीं है । एक-दूसरे से मनोमालिन्य रखना और दूसरों पर दोषारोपण करना भी अब उचित नहीं है । हमें अपने स्वतन्त्र भारत के श्रेष्ठ भवन का निर्माण करना है, जिससे उसके बालक इसमें सुख से रह सकें ।"

इस प्रकार 'भारत के श्रेष्ठ भवन' के निर्माण का कार्य प्रारभ हुआ । पहला कार्य भारत के एकीकरण को पूरा करना था । देशी राज्यों के अनेक शासक अपने स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने के स्वप्न देख रहे थे । किन्तु देशी राज्यों की प्रजा के आन्दोलन और सरदार पटेल की बुद्धिमत्ता के फलस्वरूप ये राज्य भारत में मिलने को तैयार हो गये । जम्मू और कश्मीर, हैदराबाद तथा त्रावनकोर के राज्य भारत में मिलने में कुछ हिचकिचा रहे थे, किन्तु लोकिप्रिय जनमत के कारण उन्हें भी भारत के साथ अपना एकीकरण करना पड़ा । जम्मू और कश्मीर की जनता राष्ट्रीय आंदोलन के एक अंग के रूप में अपने शासक के विरुद्ध संघर्ष कर रही थी । वहाँ का शासक भारत के साथ एकीकरण करने को पूर्णतया उद्यत न था, किन्तु जब पाकिस्तानी आक्रमणकारियों ने उस पर हमला किया तो यह राज्य भी भारत संघ में सम्मिलित हो गया । जम्मू और कश्मीर के लोगों की संविधान सभा ने 1954 में भारत संघ का एक राज्य बनने का निश्चय किया। इस प्रकार इस संविधान सभा ने कश्मीर के भारत के साथ एकीकरण की पुष्टि की । 1949 के अन्त तक अधिकतम राज्यों के भारत के साथ एकीकरण का कार्य समाप्त हो चुका था । देशी राज्यों का अलग अस्तित्व समाप्त हो चुका था और भारत संघ के विभिन्न राज्यों में इन देशी राज्यों का विलय कर दिया गया था ।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय जनता के इतिहास में एक नये युग का प्रारम्भ हुआ । एक नया और समृद्ध

भारत बनाने तथा 'प्रत्येक व्यक्ति की आँख से आँसू पोछने' का कार्य बड़ी तत्परता से प्रारम्भ कर दिया गया और यह कार्य अब भी बराबर चल रहा है ।

भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन एक गौरवशाली संघर्ष था । भारत की जनता ने इस संघर्ष के द्वारा सबसे शक्तिशाली साम्राज्य का सामना किया । इस आंदोलन में अनेक धर्मों के अनुयायी, अनेक प्रदेशों के निवासी और अनेक भाषाओं के बोलने वाले भारतवासियों ने कंधे-से-कंधा लगाकर भाग लिया । इस आंदोलन के कारण भारतवासियों में ऐसी एकता की भावना उत्पन्न हुई, जैसी पहले कभी नहीं हुई थी, सभी धर्मों और जातियों के व्यक्तियों की एकता, इस संघर्ष की प्रमुख विशेषता थी । साम्राज्यवादी शक्ति ने फूट डालनेवाली सांप्रदायिक शक्तियों को प्रोत्साहन दिया किन्तु भारतीय जनता ने इस सामान्य संघर्ष में इन फूट डालने वाली शक्तियों पर विजय पाई और विदेशी शासन से मुक्ति पाई । यह एकता ही संघर्ष में सफलता प्राप्ति करने की दृढ़ गारंटी थी । महात्मा गाँधी, जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल और मौलाना आजाद जैसे महान् नेताओं के नेतृत्व में इस एकता का निर्माण हुआ । हमारी जनता ने पाशविक दमन को सहन करने में अदम्य साहस का प्रदर्शन किया और एकता का परिचय दिया । हमारे लिए यह गौरवपूर्ण विरासत है, जिसे कभी भूलना नहीं चाहिए ।

❋❋❋

पाठ-5

भारतीय स्वतन्त्रता आंदोलन में गाँधीजी की भूमिका

उच्च मध्यवर्ग परिवार में गाँधीजी का जन्म 2 अक्टूबर 1869 को गुजरात के पोरबन्दर में हुआ था । राजकोट में प्राथमिक शिक्षा प्राप्त कर 1881 ई० में उन्होंने हाई स्कूल में प्रवेश और 1887 में मैट्रिक पास किया । इंगलैण्ड से बैरिस्टर होकर 1891 में वे भारत लौटे । दादा अब्दुल्ला एण्ड कंपनी नामक एक मुस्लिम व्यापारिक संस्था में उन्हें नौकरी मिली । उस कम्पनी के कानूनी कार्यों को देखने वे 1893 में अफ्रीका गए । वहाँ गोरी सरकार के अत्याचार के विरुद्ध मई 1894 में 'नेटाल (अफ्रीका) इंडियन कांग्रेस' की स्थापना की । 1896 में अफ्रीकी भारतीयों के लिए अंग्रेजों के विरुद्ध उन्होंने आंदोलन शुरू किया । 1899 में बोअर-युद्ध के समय 'इंडियन एम्बुलेंस कोर का गठन किया और पुरस्कृत किए गए । 1906 में गाँधीजी ने 'इंडियर स्ट्रेचर बेअरर कोर' की स्थापना की । 1907 में निष्क्रिय प्रतिरोध आंदोलन चलाया और वकालत छोड़ दी । 10 जनवरी 1908 में उन्हें दो माह के लिए कैद की सजा मिली । 1909 में गाँधीजी ने हिन्द स्वराज की रचना की ।

1915 में गाँधीजी ने अहमदाबाद में सावरमती नदी के किनारे सत्याग्रह आश्रम (साबरमती आश्रम) की स्थापना की । भारतीय मजदूरों को बन्धक बनाकर विदेशों में भेजने की अंग्रेजी नीति का विरोध उन्होंने 1917 में किया । जनवरी-मार्च 1918 में गाँधीजी ने अहमदाबाद के सूती कपड़ा मिलों के श्रमिकों की माँग को लेकर उपवास किया । रॉलेट विधेयक के विरोध में फरवरी 1918 में सत्याग्रह की योजना बनाई और 6 अप्रैल 1919 को भारत व्यापी सत्याग्रह आन्दोलन छेड़ दिया गया ।

अंग्रेजी शासन के विरुद्ध विकसित राष्ट्रीय आन्दोलन में 1919 से 1947 के बीच का काल अति महत्वपूर्ण रहा । 1919 से गाँधीजी के नेतृत्व में आमलोगों ने राष्ट्रीय आन्दोलन में व्यापक रूप से भाग लेना शुरू किया । भारतीयों की स्थिति सैद्धांतिक रूप से सुधारने के लिए 1918 में मॉन्टेग्यू-चेम्सफोर्ड रिपोर्ट प्रकाशित हुआ और 1919 में पारित हुआ । रॉलेट बिल के द्वारा 1919 में अंग्रेजी सरकार ने भारतीयों के विरुद्ध अधिकारियों को व्यापक अधिकार दिया । इसके विरुद्ध गाँधीजी ने सत्याग्रह की धमकी दी, फिर भी रॉलेट बिल पास हो गया और सरकार की दमनात्मक नीति में वृद्धि हुई । मुस्लिम क्षेत्रों पर हुए कठोर अत्याचार के कारण भारतीय मुसलमान अंग्रेजों के खिलाफ हो गए । गाँधीजी ने

मुहम्मद अली, शौकत अली एवं अन्य काँग्रेसी नेताओं के साथ शक्तिशाली खिलाफत आन्दोलन चलाया । मुसलमान राष्ट्रीय आन्दोलन के करीब आए । गाँधीजी ने भारतीय स्वतन्त्रता संघर्ष में प्रथम औजार सत्याग्रह कर दिया । सत्याग्रह के संबंध (ब्रजकृष्ण चाँदीवाला 'गाँधीजी की दिल्ली डायरी' प्रथम खण्ड, दिल्ली, स्मारक निधि 1919) में गाँधीजी ने बताया कि यह असत्य को सत्य से और हिंसा को अहिंसा से जीतने का नैतिक शस्त्र है । धैर्यपूर्वक, कष्ट सहन, अहिंसात्मक तरीके से सत्य को प्रकट एवं भूल करनेवालों का हृदय परिवर्त्तन करना सत्याग्रह का मुख्य उद्देश्य होता है ।

सत्याग्रह, असहयोग, सविनय अवज्ञा और अहिंसा को गाँधी ने स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए आवश्यक आधार स्तंभ बनाया । सरकार द्वारा किए गए वादा-खिलाफी और भ्रष्ट वातावरण बनाने के लिए उठाए गए अंग्रेजी कदमों के साथ सहयोग नहीं करना ही असहयोग कहलाया । असहयोग आन्दोलन का संचालन 1919-20 में गाँधीजी ने ब्रिटिश सरकार के अन्याय के विरुद्ध किया । रॉलेट बिलों से मुक्ति पाने के लिए उन्होंने सत्याग्रह को एकमात्र उपाय बताया । 17 मार्च 1919 को यह बिल पास हुआ । गाँधीजी ने इसके विरुद्ध देशव्यापी हड़ताल का ऐलान 30 मार्च और 6 अप्रैल 1919 को किया । सत्याग्रह सभा का गठन बम्बई में किया । सत्याग्रह नामक अंग्रेज विरोधी पत्र का प्रकाशन होने लगा । अंग्रेज सरकार सभी रॉलेट ऐक्ट को पास नहीं कर सकी । 30 मार्च को सत्याग्रह दिल्ली में हुआ जिसमें पाँच व्यक्ति मारे गए । 6 अप्रैल को पंजाब, कलकत्ता और दिल्ली में अंग्रेज विरोधी सत्याग्रह हुए । 9 अप्रैल को पंजाब जाने के रास्ते में ही उन्हें कैद कर लिया गया । अमृतसर में हड़ताल की घोषणा हुई और जालियाँवाला बाग में 13 अप्रैल को एक आम सभा आयोजित की गई । इस सभा में अंग्रेज सैनिकों ने सैकड़ों को मारा और हजारों घायल हुए । गाँधीजी ने इस घटना की निंदा जोरदार शब्दों में की ।

अंग्रेजों द्वारा किए इस दमन कार्य ने आन्दोलन की गति तेज कर दी । सत्याग्रह ने असहयोग आंदोलन का रूप लिया । गाँधीजी इसके सर्वप्रमुख नेता बने । वे प्रथम राष्ट्रीय नेता थे जिन्होंने जन साधारण को एक राष्ट्रीय मुक्ति मंच पर ला कर खड़ा कर दिया । स्त्रियाँ, कृषक, मजदूर, पूँजीपति, छात्र, वकील आदि अधिकांश लोगों में गाँधी के नेतृत्व में वीर देशभक्त और निर्भीक योद्धा सिद्ध हुए । जेल जाने वालों की संख्या बढ़ती गई । अंग्रेजी लाठी और गोली खाने वालों की संख्या में भी वृद्धि हुई । सारे देश में अंग्रेजी राज विरोधी वातावरण बनाने में गाँधीजी सफल रहे ।

गाँधीजी के कहने पर अंग्रेज सरकार को राजस्व नहीं देने का निर्णय किसानों ने लिया । शिक्षण-संस्थाओं का छात्रों ने बहिष्कार किया । कचहरियाँ छोड़कर वकीलों ने सरकारी कानून-व्यवस्था को ठप्प करा दिया । शराब और विदेशी वस्त्रों को त्यागने में स्त्रियों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई । इस सिलसिले में हजारों स्त्रियाँ जेल गईं और करोड़ों भारतीयों पर लाठी और गालियों की अंग्रेजों द्वारा बौछार की गई । गाँधीजी ने बायकॉट और स्वदेशी जैसे तरीके अपनाए । अतिशय अमानुषिक विदेशी शासन को समाप्त कराना गाँधीजी के राजनीतिक कार्यक्रम का आवश्यक अंग बन गया । उच्च वर्ग के हिन्दुओं का नैतिक स्तर सुधारने और अन्याय के विरुद्ध उनकी विवेक बुद्धि को जागृत करने का प्रयास किया गया ।

उन्होंने साम्प्रदायिकता का खुलकर विरोध किया । आत्मत्यागी पेशेवर कार्यकर्त्ताओं के संगठन देश के कोने-कोने में तैयार किए गए । गाँधी के नेतृत्व में सितम्बर 1920 में कलकत्ता में अहिंसक असहयोग आन्दोलन की तैयारी की गई । नेशनल मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़, गुजरात-विद्यापीठ, तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठ, बंगाल नेशनल युनिवर्सिटी, काशी विद्यापीठ, बिहार विद्यापीठ जैसे स्वाधीन राष्ट्रीय शिक्षण संस्थाएँ स्थापित हुईं ।

काँग्रेस का एक साधारण अधिवेशन दिसम्बर 1920 में नागपुर में हुआ और 'सार्वजनिक अवज्ञा आन्दोलन' की योजना बनी लेकिन इसकी स्पष्ट व्याख्या गाँधी ने नहीं की । इसके बावजूद आन्दोलन का वातावरण बना रहा । बंगाल और असम में रेल-कर्मचारियों ने हड़ताल की । अंग्रेज समर्थन महंतों के विरुद्ध अकालियों के विद्रोह हुए ।

कांग्रेस कार्यकारिणी समिति की एक बैठक 5 नवम्बर 1921 को दिल्ली में हुई और प्रांतीय स्तर पर नागरिक अवज्ञा आन्दोलन का निर्णय लिया गया, 17 नवम्बर 1921 को प्रिन्स ऑफ वेल्स के भारत पहुँचने पर उनके विरुद्ध देश भर में हड़ताल और प्रदर्शन हुए जिनमें अनेक लोग मारे गए और घायल हुए । व्यापक जनहिंसा से गाँधी जी को चिन्ता होने लगी । इधर स्वयंसेवक आंदोलनकारी विदेशी कपड़ों की दुकानों को बन्द कराने लगे । दिसम्बर 1921 में भारतीय

राष्ट्रीय कांग्रेस का अधिवेशन अहमदाबाद में हुआ जिसमें प्रमुख मुस्लिम नेता मौलान हसरत मोहानी ने 'पूर्ण स्वतन्त्रता' की बात कही, लेकिन इसके लिए तैयार की गई योजना से गाँधीजी सहमत नहीं हुए । सर एम० विश्वेश्वरैया की अध्यक्षता में जनवरी 1922 में एक सर्वदलीय सम्मेलन हुआ जिसमें जिन्ना और गाँधी भी सम्मिलित हुए । इस सम्मेलन में लिए गए निर्णय से वायसराय सहमत नहीं हुए और गाँधीजी ने वायसराय को सूचित किया कि उन्होंने गुजरात के बारदोली जिले में नागरिक अवज्ञा की शुरूआत करने का निर्णय ले लिया था ।

9 फरवरी को चौरीचौरा नामक जगह में थाने पर हमला कर आग लगा दी गई और 22 सिपाही मारे गये । नागरिक अवज्ञा आंदोलन को रोककर गाँधीजी ने 12 फरवरी 1922 को बारदोली में कार्यकारिणी समिति की सभा बुलाई और चौरीचौरा के अमानुषिक व्यवहार के कारण नागरिक अवज्ञा आंदोलन रोकने का निर्णय लिया । किसानों को बताया कि अपने-अपने जमींदारों को वे मालगुजारी दें क्योंकि देश के हित के लिए यह आवश्यक था । गाँधीजी और अन्य कांग्रेसी नेता जमींदारों के मूलभूत अधिकारों की रक्षा करना चाहते थे । चरखे का प्रचार, नशाबन्दी, राष्ट्रीय शिक्षण संस्थानों की स्थापना आदि रचनात्मक कार्यों का निर्णय कार्यकारिणी समिति ने लिया । देशबंधु दास, मोतीलाल और लाला लाजपत राय जैसे कैदी नेताओं एवं जनसाधारण ने गाँधीजी की इस नीति के प्रति असंतोष जाहिर किया । गाँधीजी अंग्रेजों द्वारा भी राजद्रोही करार दिए गये और 13 मार्च 1922 को लगभग पौने दो वर्षों के लिए कैद कर लिये गये ।

1919 का असहयोग आन्दोलन असफल रहा क्योंकि जनसाधारण के दिलो-दिमाग तक इसका सन्देश नहीं पहुँच सका । इसका नेतृत्व मुख्य रूप से जमींदारों जैसे उच्च एवं मध्यम वर्गों के हाथों में रहा । जनसाधारण की भलाई के लिए कुछ अपवादों को छोड़कर कोई विशेष कदम नहीं उठाया गया । बारदोली के फैसले के बाद हिन्दु-मुस्लिम एकता में भी कमी आई । अपनी स्थिति सुदृढ़ कर औद्योगिक बुर्जुआजी राष्ट्रीय आंदोलन पर हावी हो गया ।

कैद मुक्त देशबंधु दास, पंडित मोतीलाल नेहरू और विट्ठलभाई पटेल के नेतृत्व में 1923 में स्वराज्य-पार्टी की स्थापना हुई । अनेक वादों के साथ-साथ स्वराज्य पार्टी ने पूँजी के शोषण से श्रम की रक्षा और श्रम की अनुचित माँगों से पूँजी की रक्षा करने का वादा किया । लेकिन व्यावहारिक तौर पर 1924 में टाटा स्टील कम्पनी जैसे धनाढ्यों ने सरकार से आर्थिक सहायता की माँग की । मजदूरों की रक्षा का प्रबन्ध भी नहीं हो सका । 1925 में स्वराज्य-पार्टी अपनी शक्ति के सर्वोच्च बिन्दु पर रही और बड़े-बड़े उद्योगों के विकास का वातावरण बना रहा ।

इधर जमींदारों और अन्य रूढ़िवादियों के नेतृत्व में मुस्लिम लीग और हिन्दू महासभा जैसे साम्प्रदायिक संगठन मजबूत होने लगे । 1924-25 में दिल्ली, गुलबर्गा, नागपुर, शाहजहाँपुर, इलाहाबाद, जबलपुर, कलकत्ता आदि में साम्प्रदायिक दंगे हुए । मजदूर वर्ग संगठित होने लगा । सफल रूसी समाजवादी क्रान्ति ने भारतीय राष्ट्र प्रेमियों को समाजवादी और साम्यवादी सिद्धान्तों की ओर आकृष्ट किया । ये राष्ट्रप्रेमी गाँधी की विचारधारा एवं उनके कार्यों से असंतुष्ट थे । मजदूरों एवं कृषकों के अनेक संगठन बनने लगे । 1928 में बंगाल, नागपुर एवं साउथ इंडियन रेलवे आदि की हड़तालें इन्हीं पार्टियों द्वारा की गई ।

गाँधी की रचनात्मक कार्य-योजना और स्वराज्य पार्टी की वैधानिकता के प्रति 1926 के बाद असंतोष बढ़ा । 1927 में गैर-भारतीयों द्वारा स्थापित 'साइमन कमीशन' और कांग्रेस द्वारा जोरदार शब्दों में विरोध के अभाव में वामपक्ष का उदय हुआ । इसी वर्ष आयोजित मद्रास अधिवेशन में कांग्रेस ने पूर्ण स्वराज्य को अपना लक्ष्य घोषित किया । कांग्रेस ने साइमन कमीशन का बहिष्कार और जापान के विरुद्ध चीन की जनता की लड़ाई का समर्थन किया । मद्रास अधिवेशन में लिए गए निर्णय को गाँधी ने यह कहकर अनुचित बताया कि उसे बिना सोचे-समझे पास किया गया था ।

कांग्रेस का लक्ष्य पूर्ण स्वतन्त्रता थी और स्वराज्य-पार्टी के नेता साम्राज्य के मातहत डोमिनियन स्टेटस भर चाहते थे । दिसम्बर, 1928 में कांग्रेस अधिवेशन जब कलकत्ता में हुआ तो यह डोमिनियन स्टेटस और शीघ्र स्वतन्त्रता की माँग के समर्थकों के बीच राजनीतिक युद्ध का रणक्षेत्र था । एक समझौतावादी प्रस्ताव स्वीकृत कराने के लिए गाँधीजी ने सारी शक्ति लगा दी । उन्होंने बताया कि अगर एक साल के भीतर डोमिनियन स्टेटस मिल जाए तो उसे स्वीकार कर

लिया जाएगा, अन्यथा अहिंसक असहयोग आन्दोलन शुरू करना पड़ेगा ।

23 दिसम्बर, 1929 को कुछ प्रतिनिधियों के साथ गाँधीजी ने दिल्ली में वायसराय से कहा कि गोलमेज सम्मेलन भारत के लिए पूर्ण डोमिनियन की माँग को ध्यान में रखकर अपनी कार्यवाही शुरू करे । वायसराय ने गाँधी की बात नहीं मानी । वायसराय के इस जवाब के बाद ऑल इण्डिया कांग्रेस कमिटी ने अवज्ञा आन्दोलन का निर्णय लिया । 26 जनवरी, 1930 को स्वतन्त्रता दिवस मनाया गया । 30 जनवरी को गाँधीजी ने ग्यारह सूत्री माँग रखी जिसे वामपंथी राष्ट्रवादियों ने नापसंद किया ।

फरवरी, 1930 में कांग्रेस कमिटी की बैठक सावरमती में हुई । इस बैठक में लिए गए निर्णय के अनुसार गाँधीजी को नागरिक अवज्ञा आन्दोलन का नेतृत्व सौंपा गया । नागरिक अवज्ञा आन्दोलन के सिलसिले में गाँधीजी हिंसा बिल्कुल नहीं चाहते थे लेकिन हिंसा का उन्हें डर था । 2 मार्च 1930 को वायसराय को एक पत्र लिखकर बताया कि हिंसा समर्थकों की शक्ति में वृद्धि हो रही थी । अत: अहिंसा की शक्ति को क्रियाशील बनाने और ब्रिटिश सरकार की हिंसात्मक कार्यवाहियों के विरुद्ध गाँधी ने संघर्ष प्रारम्भ किया । 7 अप्रैल 1930 को डांडी में सरकार के नमक कानून का उल्लंघन किया गया । अनेक लोग कैद किए गए । अनेक गाँवों में गैर-कानूनी तौर पर नमक बनाया जाने लगा । स्त्रियों द्वारा शराब की दुकानों, अफीम के अड्डों और विदेशी कपड़ों की दुकानों पर धरना देने, छुआछूत रोकने, छात्रों द्वारा विद्यालयों एवं महाविद्यालयों का बहिष्कार करना, नौकरियों से इस्तीफा देने आदि को पूर्ण स्वराज्य के लिए गाँधी द्वारा आवश्यक बताया गया । जनप्रदर्शनों का वातावरण बना । क्रांतिकारियों ने चटगाँव का पुलिस शस्त्रागार लूट लिया । फौज कानून लागू कर अनेक लोगों को गोलियों का शिकार बनाया गया । एक हथियारबन्द गाड़ी को पेशावर में क्रांतिकारियों ने जला दिया । अनेक भारतीय सिपाहियों ने क्रांतिकारियों पर गोली चलाने से इंकार कर दिया । 5 मई, 1930 को गाँधीजी गिरफ्तार कर लिए गए । 1931 में उन्हें तथा अन्य कई लोगों को रिहा किया गया । मार्च 1931 में गाँधी-इरविन समझौता हुआ और लाख में से कुछ हजार राजनीतिक बंदियों को रिहा करने के लिए सरकार तैयार हुई । गोलमेज सम्मेलन द्वारा भारतीय संविधान की योजना बनाने का निश्चय हुआ जिसमें गाँधीजी भाग लेने को तैयार हुए । गोलमेज सम्मेलन का समर्थन 1931 के कराची सम्मेलन ने किया लेकिन वामपंथी राष्ट्रवादियों ने इसकी आलोचना की । गोलमेज सम्मेलन असफल रहा और गाँधीजी इंगलैंड से लौट आये ।

1929 में हुए विश्वव्यापी आर्थिक संकट से भारतीय कृषक भी प्रभावित हुए, अनेक प्रांतों के कृषकों ने 1931 में मालगुजारी देने से इंकार कर दिया । इसके लिए सरकार ने गाँधीजी को दोषी करार दिया । वास्तविक स्थिति यह थी कि गाँधी-इरविन समझौता के बावजूद सरकार दमनकारी बनी रही । पुन: नागरिक अवज्ञा आन्दोलन का वातावरण बना और 4 जनवरी 1932 को सरकार ने गाँधीजी को गिरफ्तार कर किया । अनेक नवीन कानूनों के आधार पर सरकार द्वारा काँग्रेस के संगठन को अवैध करार दिया गया । अप्रैल, 1933 में लगभग सवा लाख लोग गिरफ्तार किए जा चुके थे । आपसी एकता को समाप्त करने के लिए सरकार ने दलित जातियों एवं अन्य अल्पसंख्यकों के लिए अलग निर्वाचन इकाइयों की व्यवस्था की । पृथक निर्वाचन के विरुद्ध गाँधीजी ने आमरण अनशन शुरू किया । फलत: पूना पैक्ट के अनुसार हिन्दू निर्वाचन क्षेत्रों की स्थिति पूर्ववत् बनी रही लेकिन दलित जातियों के लिए स्थान सुरक्षित कर दिये गये । हरिजनों के उद्धार के लिए गाँधीजी ने मई, 1933 में पुन: अनशन किया और उनकी राय से कांग्रेस अध्यक्ष ने नागरिक अवज्ञा आन्दोलन को स्थगित कर दिया । इस स्थगन से सुभाषचन्द्र बोस, विट्ठलभाई पटेल आदि वामपंथी राष्ट्रवादियों ने गाँधीजी को असफल बताया । कांग्रेसियों के आपसी मतभेद के कारण गाँधीजी ने कांग्रेस की सदस्यता से इस्तीफा दे दिया । वामपंथी राष्ट्रवादियों एवं समाजवादी शक्तियों को छाँटकर उन्होंने नई समितियों का गठन किया । गाँधीजी जमींदारी और पूँजीवादी सम्पत्ति पर आधारित भारतीय समाज की आर्थिक संरचना के समर्थक थे । इसके कारण राष्ट्रीय आन्दोलन का क्षेत्र संकुचित हुआ । मजदूरों और कृषकों ने अपने ही वर्ग के नेतृत्व में आन्दोलन जारी रखा । 1936 में कांग्रेस की सदस्यता बिल्कुल घट गई । गाँधीजी का दृष्टिकोण निश्चय ही राष्ट्रीय एवं प्रगतिशील था लेकिन आरंभिक अनुभवों के आधार पर उन्होंने जमींदारों तथा पूँजीपतियों को अपनी विचाराधारा एवं कार्यक्रमों में विशेष स्थान दिया । जमींदार और पूँजीपति जैसे राष्ट्रीय बुर्जुआ विदेशी सरकार और साम्राज्य के हितों के विरुद्ध थे । भारतीय बुर्जुआ द्वारा

किये गये आर्थिक विकास एवं स्वतन्त्र व्यापार में साम्राज्यशाही बाधक थी । अत: गाँधीजी को अंग्रेज विरोधी विचारधारा को बुर्जुआ वर्ग ने ठोस रूप में समर्थन दिया । लेकिन राष्ट्रीय बुर्जुआ का मुख्य आधार विदेशी पूँजी और साम्राज्यवाद था, अत: क्रान्ति विरोधी होने के साथ-साथ अँग्रेज विरोधी होने की भूमिका भी बुर्जुआ ने निभाई । गाँधीवाद ने बुर्जुआजी की दोनों जरूरतों को पूरा किया । पूँजीवादी व्यवस्था पर आधारित समाज में गाँधीजी की आस्था थी लेकिन पूँजीवादी शोषण का उन्होंने सदा विरोध किया ।

गाँधीजी साम्प्रदायिकता के विरोधी थे लेकिन अनेक कारणों से हिन्दू-मुस्लिम विरोध बढ़ा । मुसलमानों के प्रति हिन्दुओं की असहिष्णुता का गाँधी ने निरन्तर विरोध किया । 1939 में द्वितीय विश्व युद्ध शुरू हुआ और भारत रक्षा अधिनियम पास हुआ । भारतीयों की ओर से जर्मनी, इटली और जापान के विरुद्ध वायसराय लॉर्ड लिनलिथगों ने युद्ध की घोषणा कर दी । गाँधी का विचार था कि स्वतन्त्रता के प्रश्न पर भारत और ब्रिटेन के बीच मतभेद होने के बावजूद इस संकट काल में भारत को ब्रिटेन की सहायता करनी चाहिए । काँग्रेस के फॉरवर्ड ब्लॉक, समाजवादियों तथा साम्यवादियों ने गाँधीजी के इस विचार का विरोध किया । 4 सितम्बर 1939 को काँग्रेस की बैठक बर्धा में हुई । सुभाषचन्द्र बोस द्वारा गठित फॉरवर्ड ब्लाक ने इस बैठक में कहा कि भारतीय संग्राम आरंभ हो जाना चाहिए । गाँधी गुट को अपना विचार बदलना पड़ा । 14 सितम्बर 1939 को काँग्रस ने प्रस्ताव पास किया कि अंग्रेजी सरकार से भारतीयों को आत्म निर्णय का अधिकार प्राप्त हो । स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद ही भारत ब्रिटिश रक्षा के हित में कार्य करेगा । प्रधानमन्त्री चर्चिल ने काँग्रेस की सभी माँगों को ठुकरा दिया और कुछ असंतोषप्रद आश्वासन देने का प्रयास बायसराय लिनलिथगों ने 8 अगस्त 1940 को किया । उसने जिन्ना की पाकिस्तान योजना को अप्रत्यक्ष रूप से स्वीकार कर फूट डालने का प्रयास किया । 15 अगस्त 1940 को बम्बई अधिवेशन में गाँधी के नेतृत्व में व्यक्तिगत सत्याग्रह का निर्णय लिया गया । गाँधी ने सर्वप्रथम विनोवा भावे को चुना । दूसरे सत्याग्रही जवाहरलाल नेहरू थे । अनेक सत्याग्रही गिरफ्तार किए गए । 1941 में जापान का वर्मा पर अधिकार हो गया । इंगलैंड से सन्धि हो जाने के कारण रूस का समर्थन भारत को मिलना बन्द हो गया । अमेरिका तथा चीन ने भारतीय स्वतन्त्रता का समर्थन जापान के द्वारा भारत पर आक्रमण की संभावना के कारण किया । जापान के डर से काँग्रेस ने व्यक्तिगत सत्याग्रह को समाप्त कर दिया लेकिन भारत को स्वतन्त्रता प्रदान करने के लिए ब्रिटेन तैयार नहीं था ।

भारतीय समस्या के समाधान के लिए 23 मार्च 1942 को भारत में क्रिप्स मिशन आया लेकिन असफल रहा । अब गाँधीजी ने स्वतन्त्रता के लिए प्रत्यक्ष कार्यवाही करने का निर्णय कर पूर्ण स्वतन्त्रता की माँग की । इस समय तक देश की राजनीतिक और आर्थिक स्थिति बिल्कुल खराब हो चुकी थी । गाँधीजी को आशा थी कि अंग्रेजी शासन के समाप्त होने पर हिन्दू-मुस्लिम झगड़ा समाप्त हो सकता है । जापान भी तब भारत पर आक्रमण नहीं करेगा । 5 जुलाई 1942 को 'हरिजन' नामक पत्रिका में गाँधीजी ने अंग्रेजों से तुरन्त भारत छोड़ने की अपील की । बर्धा में "भारत छोड़ो" प्रस्ताव पास हुआ । गाँधीजी ने कहा, 'भारत छोड़ो' आंदोलन कांग्रेस की अन्तिम कोशिश होगी जिसमें भारतीय स्वतंत्रता प्राप्त करेंगे या मर मिटेंगे । इसके लिए गाँधीजी ने कुछ आदेश जारी किया जिसके अनुसार अंग्रेजी सरकार को पूर्णत: पंगु बना देना था । 9 अगस्त 1942 ई० को गाँधीजी गिरफ्तार कर लिए गए लेकिन भारत छोड़ो आंदोलन आरम्भ हो गया । सरकार इस आंदोलन को कठोरतापूर्वक दबाने में लग गई और आन्दोलन का स्वरूप भी हिंसात्मक हो गया । सरकार की अमानुषिक दमनकारी नीति की कड़ी आलोचना की गई । आन्दोलनकारियों तथा सरकारी नीति से वे ऊब गए और 10 फरवरी 1943 को 21 दिनों का उपवास जेल में किया । उनकी बिगड़ती दशा को देख सरकार ने 6 मई 1944 को उन्हें रिहा कर दिया । उन्होंने एक राष्ट्रीय सरकार बनाने का सुझाव दिया और भारत को सत्ता देने की अपील की । अनेक कारणों से 1942 का भारत छोड़ो आंदोलन असफल रहा । ठोस योजना और नेताओं की अनुपस्थिति इस आंदोलन की विफलता के मुख्य कारण थे ।

गाँधीजी की नजरबन्दी के दौरान उनकी पत्नी कस्तूरबा गाँधी का देहावसान 22 फरवरी 1944 को आगा खाँ महल में हो गया । गाँधीजी काफी दु:खी हुए । 15 मई, 1944 को जेल से रिहा होने पर उन्होंने वायसराय से भेंट करनी चाही लेकिन वायसराय ने भेंट नहीं की । काँग्रेस की स्थिति और खराब होने लगी, जब 'भारत छोड़ो' के नारे

के साथ-साथ मुस्लिम लीग ने 'भारत का विभाजन करो और चले जाओ' का नारा दिया । नोआखाली (बंगाल) में फैले साम्प्रदायिक दंगे को गाँधीजी ने जान की बाजी लगाकर शांत किया । साम्प्रदायिकता की आग देश में सुलगती रही। जिन्ना नेहरू के साथ अन्तरिम सरकार बनाने को राजी नहीं हुए । वायसराय के दबाव से अन्तरिम सरकार में मुस्लिम लीग सम्मिलित हुई । लॉर्ड माउन्टबेटन भारत के नए वायसराय नियुक्त हुए । संविधान निर्माण की योजना बनी । गाँधी के नहीं चाहने के बावजूद भारत-विभाजन हुआ । हिंसात्मक घटनाएँ भी घटती रहीं । साम्प्रदायिक सद्भावना के लिए 19 जनवरी 1948 को दिल्ली में गाँधीजी ने आमरण अनशन की घोषणा की । इसका असर देश पर अच्छा पड़ा । गाँधीजी का यह अन्तिम सत्याग्रह था । शुक्रवार 30 जनवरी 1948 को प्रार्थना सभा में जाते हुए उन्हें गोली मार दी गई ।

गाँधीजी मरकर भी अमर बन गए । देश की आजादी के लिए वे जीवन भर संघर्षरत रहे । देश में जितने प्रकार के राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक और भौगोलिक माहौल थे उनमें एकता और जागरूकता लाने वले अनेक नेता थे लेकिन सभी के संयुक्त प्रयास ने भी वह नहीं किया जो गाँधीजी ने अकेले कर दिखाया ।

❋❋❋

पाठ-6

स्वतन्त्रता – प्राप्ति और देश – बँटवारा

भारत में अपना औपनिवेशिक शासन बनाये रखने के प्रयास में ब्रिटिश शासक दल की अपनी आशाएँ मुख्य राजनीतिक पार्टियों-काँग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच मतभेदों को बढ़ाने पर केन्द्रित थीं । मई, 1945 में वेबेल ने लन्दन की यात्रा के बाद वायसराय के अधीन भारतीय राजनीतिक पार्टियों के प्रतिनिधियों से गठित कार्यकारिणी परिषद स्थापित करने की योजना की घोषणा की । जून में उसने भारत की तत्कालीन ग्रीष्मकालीन, राजधानी शिमला में कांग्रेस और मुस्लिम लीग के प्रतिनिधियों के साथ बतचीत की । सम्मेलन के पहले काँग्रेस नेताओं जवाहर लाल नेहरू, बल्लभभाई पटेल, मौलान आजाद को रिहा कर दिया गया था । सम्मेलन में गाँधीजी ने और उन्होंने भाग लिया ।

बावेल ने कार्यकारिणी परिषद् के गठन की अपनी योजना प्रस्तुत की जो लियाकत अली खाँ और भूलाभाई देसाई द्वारा प्रस्तावित समाधान से भिन्न नहीं प्रतीत होती थी । लेकिन बैवेल के प्रस्तावों में यह व्यवस्था थी कि परिषद में स्थान राजनीतिक पार्टियों के लिए नहीं बल्कि धार्मिक समुदायों के लिए सुरक्षित होंगे । यह दोनों पार्टियों के लिए अस्वीकार्य था । राष्ट्रीय काँग्रेस अपने को कोई हिन्दू संगठन नहीं बल्कि वस्तुत: राष्ट्रव्यापी धर्म-निरपेक्ष संगठन मानती थी । दूसरी तरफ मुस्लिम लीग भारतीय मुसलमानों का एकमात्र प्रतिनिधि होने का दावा करती थी और इसलिए वह इसके लिए सहमत नहीं हुई कि काँग्रेस के मुस्लिम सदस्यों को परिषद् में शामिल किया जाये । इसके अलावा यह सुझाव था कि प्रस्तावित कार्यकारिणी परिषद् केवल ब्रिटिश ताज और संसद के प्रति जिम्मेदार होगी ।

शिमला वार्ता असफल रही । लेकिन औपनिवेशिक शासन ने इस असफलता का दोष वार्ता में भाग लेनेवाली भारतीय राजनीतिक पार्टियों के मत्थे लगाया । ब्रिटिश साम्राज्यवादी यह आशा करते थे कि काँग्रेस और लीग के बीच मतभेद और तीव्र हो जायेंगे और देश में समग्र रूप से हिन्दू-मुस्लिम संबंधों के खराब होने से भारत में औपनिवेशिक शासन कायम रखना सम्भव हो जायेगा ।

1945 में ब्रिटेन में पहले युद्धोत्तर चुनाव में मजदूर दल (लेबर पार्टी) की विजय ने प्रारम्भ में भारत में ब्रिटिश नीति में कोई बड़े परिवर्त्तन नहीं उत्पन्न किये । जुलाई में बैवेल को ब्रिटेन बुला लिया गया और उसके लौटने के बाद 19 सितम्बर 1945 ई० को भारतीय नीति के संबंध में ऐटली सरकार की पहली घोषणा लन्दन और दिल्ली में एक साथ की गयी । उसमें कहा गया था कि मजदूर दल की सरकार 1953 के क्रिप्स प्रस्तावों को क्रियान्वित करेगी । यह

भी कहा गया कि 1945-46 की सर्दियों में केन्द्रीय और प्रांतीय विधानमण्डलों के चुनाव होंगे । लेकिन जनव्यापी उपनिवेशवाद विरोधी आन्दोलन ने शीघ्र ही ब्रिटिश सरकार की योजनाओं में भारी संशोधनों को अनिवार्य बना दिया ।

1945 के मध्य में हड़ताल-आन्दोलन को एक नया संवेग प्राप्त हुआ । तत्कालीन मजदूर-आन्दोलन में एक नया लक्षण अधिकाधिक हड़तालों द्वारा लिया जानेवाला राजनीतिक स्वरूप था । मजदूर वर्ग का आर्थिक संघर्ष अब छात्रों तथा श्रमजीवी जनता के अन्य समूहों के राजनीतिक संघर्ष और प्रदर्शनों के साथ एकाकार होता रहा था । मजदूर-आन्दोलनों में आने वाली इस प्रक्रिया को जनवरी,1945 में मद्रास में अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन काँग्रेस के 21वें अधिवेशन द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव प्रतिबिंबित करते हैं । इस अधिवेशन में ट्रेड-यूनियन के आन्दोलन के एक प्रमुख नेता और काँग्रेस सदस्य वी० वी० गिरि के रखे राजनीतिक स्थिति संबंधी प्रस्ताव को सर्वसम्मति से स्वीकार किया गया, जिसमें भारत की स्वतन्त्रता प्रदान करने की माँग की गयी थी । राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन में तेजी आने के साथ अखिल भारतीय ट्रेड-यूनियन काँग्रेस न केवल पूरे देश में मजदूर वर्ग के आर्थिक संघर्ष का नेतृत्व ही कर रही थी,बल्कि इस संघर्ष को औपनिवेशिक शासन के खिलाफ व्यापक जनवादी आन्दोलन के मार्ग पर भी आगे ले जा रही थी । इस संघर्ष के दौरान परिस्थितियाँ धीरे-धीरे ट्रेड-यूनियन संगठनों के भीतर विभिन्न राजनीतिक गुटों के बीच सहयोग के सुदृढ़ीकरण के अनुकूल होने लगीं । एकता के लिए संघर्ष में कम्युनिष्ट अगली पंक्ति में थे और इससे संगठित मजदूर-आन्दोलन के भीतर उनका प्रभाव और बढ़ा ।

1945 के उत्तरार्द्ध में हड़ताल और प्रदर्शन, फौज और पुलिस के साथ सशस्त्र टक्करों और दंगों में परिवर्तित होने लगे । पुलिस के साथ इस तरह की पहली बड़ी टक्कर अगस्त में वाराणसी में हुई थी । इसके बाद बम्बई में दंगा हुआ, जिसे औपनिवेशिक प्रशासन के दलालों ने कई दिन चलने वाले हिन्दू मुस्लिम दंगों के रास्ते पर मोड़ दिया । विश्व युद्ध के बाद इन दोनों सम्प्रदायों के बीच यह पहला गंभीर दंगा था । इसे भड़काने में सफल होने के बाद ब्रिटिश उपनिवेशवादियों ने साम्राज्यवाद विरोध में हाल में सुदृढ़ होती हिन्दू-मुस्लिम एकता को क्षीण करने की अपनी कोशिश जारी रखी ।

1945 के शरद में दो घटनाओं ने आंतरिक राजनीतिक तनाव को बढ़ाया तथा उपनिवेशवाद विरोधी जन आन्दोलन को और भी जोर पकड़ने में योग दिया । राष्ट्रीय काँग्रेस, मुस्लिम लीग, कम्युनिष्ट पार्टी और अन्य जन संगठनों के नेताओं ने दक्षिण-पूर्वी एशिया के देशों में राष्ट्रीय मुक्ति-आन्दोलन को कुचलने के अनेक प्रयासों में फ्रांस और हालैण्ड की सहायता के लिए आंग्ल-भारत सेना का प्रयोग करने के विरोध में किया । ब्रिटिश सरकार के निर्णय के विरोध में देश भर में जलसे, जुलूस और प्रदर्शन आयोजित किये गये । 25 अक्टूबर को पूरे देश में "इण्डोनेशिया दिवस" मनाया गया । जलसों, जुलूसों के अलावा भारतीय मजदूरों ने इण्डोनेशिया के फौजी सामान ले जानेवाले जहाजों पर माल लादने से इन्कार कर दिया ।

नवम्बर में दिल्ली में विश्वयुद्ध के दौरान सुभाषचन्द्र बोस द्वारा मलाया, वर्मा आदि की आंग्ल-भारतीय सेना के बन्दी सैनिकों से गठित आजाद हिन्द फौज के अफसरों के एक दल (शाहनवाज खाँ, गुरबख्श सिंह ढिल्लों तथा प्रेम कुमार सहगल) पर फौजी अदालत में मुकदमा शुरू हुआ । बोस स्वयं 1945 में बर्मा से चले गये थे और हवाई जहाज से जापान जाते समय विमान दुर्घटना में मारे गये थे । भारतीय जनता बोस और सहयोगियों को राष्ट्रीय स्वतन्त्रता का योद्धा मानती थी, जिन्होंने औपनिवेशिक शासन के खिलाफ हथियार उठाये थे । बोस अपने जन्म-प्रांत बंगाल में विशेष रूप से लोकप्रिय थे, जहाँ उनके द्वारा संगठित फारवर्ड ब्लॉक अब भी सक्रिय था । सुभाषचन्द्र बोस को अब सारे देश में 'नेताजी' कहा जाने लगा था, जो आजाद हिन्द सरकार और आजाद हिन्द सेना में उनकी उपाधि थी ।

उक्त फौजी अदालत द्वारा आजाद हिन्द फौज के तीनों अफसरों को लम्बी कैद की सजा के फैसले ने देश भर में जबरदस्त रोष उत्पन्न किया और विरोध प्रदर्शन को जन्म दिया । कलकत्ता में जन-प्रदर्शन आम राजनीतिक हड़ताल में परिणत हो गये, जिसमें मजदूरों, छात्रों, व्यापारियों, नौकरी पेशा लोगों और कारीगरों सभी ने भाग लिया । सड़कों पर बैरीकेड, अवरोध और मोरचे खड़े कर दिये गये । परिवहन और नगरपालिका कर्मचारियों की हड़ताल के परिणामस्वरूप नगर, पानी और रोशनी से भी वंचित हो गया । 22 से 25 नवम्बर तक पुलिस और फौज के साथ मुठभेड़ें होती रहीं,

दर्जनों प्रदर्शनकारी मारे गये, सैकड़ों घायल हुए । नेताजी के भाई शरतचन्द्र बोस सहित काँग्रेस नेताओं के हस्तक्षेप से ही हड़ताल खत्म हो पायी । कलकत्ता से विरोध आंदोलन का यह रूप बम्बई और अन्य नगरों में भी फैल गया । औपनिवेशिक अधिकारियों ने आजाद हिन्द फौज के अफसरों पर मुकदमें चलाना जारी रखा । फरवरी 1946 में एक मुस्लिम अफसर को सजा दी गयी । नवम्बर 1945 की घटनाओं की कलकत्ता में दुगने जोश से पुनरावृत्ति हुई । 11 फरवरी को छात्र संगठनों द्वारा घोषित हड़ताल ने एक नई आम हड़ताल को शुरू कर दिया, जो 15 फरवरी तक चलती रही और जिसके दौरान पुलिस के साथ मुठभेड़ हुईं । सड़कें बैरीकेडों से भर गयीं । आंदोलन कलकत्ता से बम्बई तक उत्तर-पश्चिम के अनेक बड़े नगरों में फैल गया । अंग्रेजों में घबराहट और दहशत फैल गयी और सरकार विरोधी प्रदर्शन और जलसे-जुलूसों को कुचलने के लिए बड़ी-बड़ी फौजी टुकड़ियाँ भेजी गयीं । इस बार आजाद हिन्द फौज के बचाव आंदोलन का समर्थन सिर्फ काँग्रेस ही नहीं, बल्कि मुस्लिम लीग ने भी किया । सारी कोशिशों के बावजूद अंग्रेज इस बार कोई हिन्दू-मुस्लिम टकराव नहीं भड़का पाये ।

बिगड़ती आर्थिक स्थिति ने 1946 के प्रारम्भ में हड़तालों की एक नयी लहर पैदा कर दी । इस अवस्था में देशी रियासतों के मजदूर भी हड़ताल-आंदोलन में खिंच आने लगे थे । उदाहरणार्थ मैसूर की कोलार स्वर्ण खानों तथा ग्वालियर की कपड़ा मिलों में निम्नलिखित तालिका हड़ताल आंदोलन का विकास प्रदर्शित करती है–

वर्ष	हड़तालों की संख्या	हड़तालियों की संख्या (लाखों में)	नष्ट श्रमदिवों की संख्या (लाखों में)
1945	859	8	38
1946 (पहली चौथाई)	426	5.8	30

राजनीतिक अशांति गाँवों में भी फैल गयी थी । 1945 के शदर में औपनिवेशिक शासन के खिलाफ कुछ जगहों पर जन कार्रवाई अपने उच्चतम रूप सशस्त्र संघर्ष में पहुँच गयी थी । इस राजनीतिक उफान का चरम फरवरी 1946 में सशत्र सेनाओं के सदस्यों का आंदोलन में शामिल होना शुरू करना था ।

1946 में नौ सैनिक प्रशिक्षण पोत 'तलवार' पर नाविकों के बीच एक स्वत: स्फूर्त विद्रोह भड़क उठा । इसके पहले उन्होंने अपने को दिये जानेवाले खराब भोजन (नौसैनिकों को बालू मिला और सड़ा हुआ चावल दिया जाता था) की शिकायत करते हुए एक याचिका पेश की थी । कमान अफसरों द्वारा शिकायत करने वालों के खिलाफ अनुशासनिक और प्रतिशोधात्मक कार्रवाई शुरू करने के प्रयास के परिणामस्वरूप जहाज के सभी नाविकों की हड़ताल फूट पड़ी जो 18 फरवरी को शुरू हुई । अगले दिन उस क्षेत्र में लंगर डाले सभी 20 जलपोतों के नौसैनिक हड़ताल में शामिल हो गये । हड़तालो नौसैनिकों की माँग थी कि नौसेना में नस्ली भेद-भाव समाप्त किया जाये । भारतीय नाविकों के लिए सेवा शर्तें ब्रिटिश नाविकों के समान की जाएँ और जहाजों पर रहन-सहन की परिस्थितियों को विशेष रूप से भोजन के संबंध में, सुधारा जाये । उन्होंने ब्रिटिश अफसरों द्वारा भारतीय नाविकों को निरन्तर अपमानित किये जाने के खिलाफ भी विरोध प्रकट किया ।

19 फरवरी को हड़तालियों ने एक हड़ताल समिति चुनने के बाद बम्बई में जुलूस निकाला । भारतीय नाविकों का संघर्ष अब राजनीतिक स्वरूप ग्रहण करता जा रहा था–सेवा की अवस्थओं में सुधार की उपर्युक्त माँगों के अलावा हड़तालियों ने सभी राजनीतिक बन्दियों को रिहा किये जाने और आंग्ल-भारतीय फौजों के इण्डोनेशिया से वापस बुलाये जाने की दो अन्य माँगें भी पेश कीं ।

काँग्रेस, मुस्लिम लीग और कम्युनिस्ट पार्टी के झंडों के नीचे संगठित यह उपनिवेशवाद विरोधी प्रदर्शन साम्राज्यवाद विरोधी शक्तियों को एक जगह लाने के प्रयास का प्रतीक था ।

20 फरवरी को विद्रोह को कुचलने के लिए सैनिक टुकड़ियाँ बम्बई लायी गयीं । विद्रोही जलपोतों के नाविकों ने अपनी कार्रवाइयों में सामंजस्य कायम किया और पाँच सदस्यों की कार्यकारिणी समिति चुनी गयी । अगले दिन

ब्रिटिश फौज ने हमला शुरू कर दिया । दोनों पक्षों के बीच गोलियाँ चलीं और तोपों ने गोले बरसाये । लड़ाई में किसी भी पक्ष का पलड़ा भारी नहीं रहा और चार बजे अपराह्न में युद्ध-विराम घोषित कर दिया गया । विद्रोह की खबर पूरे देश में तेजी से फैल गयी । करॉंची, कलकत्ता, मद्रास और विशाखापत्तनम में भारतीय नौसैनिक तथा दिल्ली, थाणे और पूणें में कोस्ट गार्ड भी हड़तालियों के समर्थन में निकल गये । ऐसा लगता था कि विद्रोह शाही भारतीय नौ सेना में फैल जायेगा ।

स्थिति इस कारण और भी पेचीदा हो गयी थी कि फरवरी के प्रारम्भ से ही बम्बई में शाही भारतीय वायु सेना के पायलट और हवाई अड्डे के कर्मचारी भी नस्ली भेद-भाव के विरोध तथा निवृत्त किये जाने में तेजी लाने के लिए हड़ताल पर थे । कलकत्ता तथा अनेक दूसरे हवाई अड्डों के पायलटों ने भी उनके समर्थन में हड़ताल कर दी थी ।

आंग्ल भारतीय सेना और नौसेना में इस आंदोलन को जनवादी शक्तियों का पूरा-पूरा समर्थन प्राप्त हुआ । कम्युनिस्ट पार्टी के आह्वान पर बम्बई में 22 फरवरी को हड़ताल हुई, जुलूस निकाले गये और विराट सभा हुई । बम्बई श्रमजीवी लोगों की कार्रवाई के शांतिपूर्ण स्वरूप के बावजूद प्रदर्शनकारियों के खिलाफ सेना और पुलिस की बड़ी टुकड़ियाँ भेजी गयीं और उन्हें निर्मम दमन का शिकार बनाया गया । लगभग तीन सौ लोग मारे गये और 1,700 घायल हुए ।

सेना के सशस्त्र आन्दोलन और उसमें कम्युनिस्टों की सक्रिय भूमिका ने केवल औपनिवेशिक प्रशासन को ही नहीं, बल्कि राष्ट्रीय संगठनों में पूँजीवादी सामन्ती तत्त्वों के नेताओं को भी आंतकित कर दिया । काँग्रेस और लीग के नेताओं ने, जिन्होंने विद्रोही नाविकों को उनकी मुख्य माँगों के लिए अपनी सहानुभूति और समर्थन का आश्वासन दिया था, उन्हें हड़ताल तथा अधिकारियों के खिलाफ प्रतिरोध समाप्त करने को कहा । काँग्रेस के नेताओं के प्रतिनिधि के रूप में सरदार पटेल विद्रोही नाविकों की कार्यकारिणी समिति से बातचीत करने के लिए बम्बई पहुँचे । काँग्रेस और लीग के नेताओं के दबाव से हड़ताल समिति ने 23 फरवरी को आत्म-समर्पण कर दिया । लेकिन देश के कुछ भागों में सैनिकों और नौसैनिकों की हड़तालें कुछ और दिन चलती रहीं । भारतीय सशस्त्र सेनाओं के भीतर इस कार्रवाई ने स्पष्ट कर दिया कि भारत में एक क्रांतिकारी स्थिति उत्पन्न हो रही है ।

भारत में इन घटनाओं के दबाव में लेबर (मजदूर दल) सरकार को भारत के राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन को रियायतें देने के लिए विवश होना पड़ा । फरवरी में एक कैबिनेट मिशन भारत के लिए रवाना हुआ । इसमें इसके नेता, भारत मंत्री सर पेथिक लारेंस के अलावा दो और मंत्री लार्ड अलेक्जेंडर और स्टैफोर्ड क्रिप्स शामिल थे । 15 मार्च 1946 को एटली ने भारत के संबंध में मजदूर दल की नीति की दूसरी घोषणा की जिसके अनुसार भारत को औपनिवेशिक पद (डोमीनियन स्टेटस) या स्वराज्य प्रदान किया जाने वाला था । इस घोषणा में ऐटली ने स्वीकार किया कि स्वतन्त्रता आन्दोलन राष्ट्रव्यापी है और यह कि उसमें सेना भी शामिल है ।

मार्च के अन्त में कैबिनेट मिशन भारत पहुँचा, जहाँ काँग्रेस और मुस्लिम लीग के नेताओं के साथ उसका लम्बा विचार-विनिमय शुरू हुआ, जो अप्रैल भर चलता रहा । दोनों पार्टियों के रुख को अप्रैल 1946 के प्रारम्भ में हुए प्रांतीय विधान-मंडलों के चुनाव परिणामों ने प्रभावित किया था ।

ये चुनाव जिनमें 13 प्रतिशत से भी कम आबादी ने भाग लिया और जो पृथक निर्वाचन-मंडल के आधार पर हुए थे, धार्मिक समुदायों के बीच संबंधों को सार्वजनिक ध्यान के केन्द्र में ले आये । राष्ट्रीय काँग्रेस ने सभी प्रांतों में आम (हिन्दू) निर्वाचन मंडल ने पूर्ण बहुमत तथा मुस्लिम निर्वाचन मंडल ने केवल उत्तर पश्चिमी सीमा प्रान्त में बहुमत प्राप्त किया । मुस्लिम लीग ने भी उन सभी प्रान्तों में, जहाँ अधिकांश आबादी हिन्दू थी, मुस्लिम निर्वाचन-मंडल ने और बंगाल में भी, जहाँ आबादी में बहुलांश मुसलमानों का था, बहुमत प्राप्त किया । दो अन्य प्रान्तों पंजाब और सिंध में जहाँ अधिकांश आबादी मुस्लिम थी, मुस्लिम निर्वाचन-मण्डल में मत मुस्लिम लीग और उसके विरोधी स्थानीय दलों में विभाजित थे ।

चुनाव ने सर्वप्रथम यह प्रदर्शित किया कि अधिकांश मतदाता संयुक्त भारत बनाये रखने के पक्ष में थे, मुस्लिम

लीग द्वारा प्रस्तावित पाकिस्तान के निर्माण में केवल उन प्रान्तों के अधिकांश मुस्लिम मतदाताओं को आकर्षित किया था, जहाँ अधिकांश आबादी गैर-मुस्लिम थी । तीसरे, मुस्लिम लीग को सम्पूर्ण देश में मुस्लिम समुदाय के भीतर दृढ़ समर्थन प्राप्त था ।

राष्ट्रीय काँग्रेस ने प्रान्तीय विधानमंडलों में 630 स्थान प्राप्त किये थे जबकि मुस्लिम लीग ने 797 स्थान जीते थे । फिर भी लीग सिर्फ बंगाल में ही प्रान्तीय सरकार बनाने की स्थिति में थी ।

हालाँकि जैसा कि पहले बताया जा चुका है, भारत की आबादी के बहुत थोड़े भाग को मत देने का अधिकार प्राप्त था फिर भी ये मतदाता सामान्यतया आबादी का राजनीतिक रूप से सबसे सचेत हिस्सा थे और जनमत के निर्माण पर सबसे महत्वपूर्ण प्रभाव डालते थे ।

भारतीय कम्युनिष्ट पार्टी ने चुनाव में पहली बार भाग लिया । उसने 108 उम्मीदवार खड़े किये जिसमें से नौ चुने गये । कुल मिलाकर कम्युनिस्ट पार्टी को लगभग सात लाख मत प्राप्त हुए । अपने चुनाव घोषणा-पत्र में पार्टी ने सामाजिक परिवर्तन का व्यापक कार्यक्रम प्रस्तुत किया था–जमीन्दारियों का जब्त किया जाना, उद्योग की प्रमुख शाखाओं का राष्ट्रीयकरण, बड़ी फैक्टरियों पर मजदूर नियन्त्रण प्रणाली की स्थापना आदि । कार्यक्रम में यह भी कहा गया था कि राष्ट्रीय प्रशासन की समस्या को प्रत्येक जाति के आत्म-निर्णय के आधार पर हल किया जाना चाहिए और जनवादी आधार पर संविधान सभा चुनी जानी चाहिए । संघर्ष का अन्तिम लक्ष्य भारत की पूर्ण स्वतन्त्रता थी । इसके बावजूद कम्युनिस्ट पार्टी की स्थिति अब भी कमजोर थी । चुनावों में उसकी भागीदारी भारतीय जनता के व्यापक हिस्सों को कम्युनिष्ट नीति और सिद्धान्तों से परिचित कराने में सहायक हुई ।

चुनाव के नतीजे ने राष्ट्रीय काँग्रेस के नेताओं को भारत की एकता की रक्षा करने के संकल्प को पहले से भी अधिक दृढ़ बनाया और साथ ही मुस्लिम लीग के नेताओं को यह विश्वास दिलाया कि उन्हें पाकिस्तान के निर्माण के लिए दृढ़तापूर्वक बढ़ते जाना चाहिए ।

वार्त्ता का अन्त घोर विफलता में हुआ, जिसमें ब्रिटिश मिशन ने काँग्रेस और लीग के बीच विरोधों का चालाकी से पूरा लाभ उठाया था । 16 मई, 1946 को ब्रिटिश सरकार ने एक घोषणा प्रकाशित की जिसमें भारत के विभाजन के विचार को औपचारिक रूप में अस्वीकार करने के बावजूद संयुक्त औपनिवेशिक राज्य में हिन्दू बहुसंख्या द्वारा मुस्लिम अल्पसंख्या को आत्मसात कर लेने के खतरे की तरफ इशारा किया गया था । इसके दृष्टिगत ब्रिटिश सरकार ने निम्नलिखित "समझौता योजना" प्रस्तुत की ।

(1) भारत का औपनिवेशिक राज्य (डोमीनियन) प्रान्तों और देशी राज्यों का संघ होगा, जिसे व्यापकतम स्वायत्तता प्राप्त होगी । केन्द्रीय सरकार मात्र सुरक्षा, विदेश नीति और संचार के लिए जिम्मेदार होगी ।

(2) ब्रिटिश भारत के प्रान्तों को तीन क्षेत्रों में संयुक्त किया जायगा-पहला क्षेत्र जिसमें हिन्दुओं का बाहुल्य होगा । देश के उत्तरी, मध्यवर्ती और दक्षिणी प्रान्तों से गठित होगा, दूसरा पश्चिमी क्षेत्र में मुस्लिम-बहुल प्रान्त पंजाब, सिंध और उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त शमिल होंगे, तीसरा पूर्वी क्षेत्र बंगाल और असम के प्रान्तों से गठित होगा, जहाँ भी मुस्लिमों का बाहुल्य है । प्रत्येक क्षेत्र में एक क्षेत्रीय सरकार कायम की जाएगी ।

(3) एक संविधान सभा गठित की जाएगी, जिसमें प्रान्तीय विधानमण्डलों द्वारा निर्वाचित तथा राजाओं द्वारा नियुक्त प्रतिनिधि होंगे, जो सम्पूर्ण भारत के लिए संविधान तैयार करेगी । संविधान सभा में तीन भाग होंगे, जिसमें सम्बद्ध प्रान्तों के प्रतिनिधियों द्वारा तीनों क्षेत्रों के संविधान तैयार किये जायेंगे ।

(4) संविधान सभा का चुनाव तीन निर्वाचक-मण्डलों हिन्दू, मुस्लिम और सिक्ख–के आधार पर होगा (दस लाख की आबादी पर एक प्रतिनिधि) । संविधान के प्रारूप के हर अनुच्छेद के अनुमोदन के लिए केवल संविधान सभा के पूर्णाधिवेशन में बहुमत ही नहीं, बल्कि हिन्दू और मुस्लिम निर्वाचक-मण्डलों के प्रतिनिधियों का बहुमत भी आवश्यक होगा ।

ब्रिटिश प्रस्ताव संविधान सभा के काम-काज की ऐसी परिस्थितियाँ उपलब्ध करते थे, जिन्होंने काँग्रेस और लीग के बीच समझौता को रोका तथा अन्ततः असंभव बना दिया । प्रस्तावों के सारे प्रतिबंधों के बावजूद यह स्पष्ट था कि ब्रिटिश शासक हल के लिए पाकिस्तान का पृथक राज्य कायम करके भारत को विघटित करने के प्रयासों में मुस्लिम लीग का समर्थन करने को तैयार थे । मुस्लिम लीग का कार्यक्रम ब्रिटिश साम्राज्यवादियों के हितों से टकराता नहीं था, जो भारत को दासता में और अधिक रखने की स्थिति में न रहने के कारण ऐसे राजनीतिक "समाधान" की योजनाएँ गढ़ रहे थे, जिनसे भारत आर्थिक और सैनिक दृष्टि से बहुत कमजोर हो जाता और इस तरह उसकी अपने भूतपूर्व शासकों पर निर्भरता को बढ़ाना आसान हो जाता ।

इस बीच औपनिवेशिक प्रशासक भारत की भावी स्थिति के प्रश्न के किसी भी अन्य साधन से हल को टालने तथा "सत्ता हस्तांतरण" अधिक-से-अधिक बिलम्बित करने के लिए कदम उठा रहे थे ।

इस समय तक देश में क्रांतिकारी परिस्थिति पैदा हो चुकी थी । यह स्पष्ट था कि भारतीय पूँजीवादी वर्ग और जमींदारों के प्रतिनिधियों को सत्ता हस्तांतरण और विलम्ब से ऐसी परिस्थिति पैदा हो जाएगी कि भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवादियों द्वारा स्थापित राजनीतिक प्रणाली जनता के सशस्त्र संघर्ष के परिणामस्वरूप पूर्णतया ध्वस्त हो जाएगी ।

20 फरवरी, 1947 को एटली ने भारत संबंधी नीति के बारे में मजदूर दलीय सरकार की तीसरी घोषणा प्रकाशित की, जिसमें कहा था कि अंग्रेज जुलाई, 1948 तक भारत छोड़ देंगे और यह कि यदि उस समय तक केन्द्रीय सरकार कायम नहीं हुई, तो सत्ता विभिन्न प्रान्तों की सरकारों को सौंप दी जाएगी । माउन्टबेटन को नया बायसराय नियुक्त किया गया, जिसे इस योजना को कार्यान्वित करना था ।

काँग्रेस और मुस्लिम लीग दोनों ने ही इस घोषणा का स्वागत किया । लेकिन दोनों पार्टियों के बीच संबंधों को उलझाने के लिए अंग्रेजों ने हिन्दुओं और मुसलमानों के दंगे करवाये, जिसने पंजाब में खासकर गंभीर रूप लिया, जहाँ मुस्लिम लीग ने भारतीय एकता की समर्थक स्थानीय सरकार के खिलाफ प्रदर्शन किए थे ।

देश पर अपनी पकड़ बनाए रखने के अन्तिम प्रयास में ब्रिटिश साम्राज्यवादियों ने यह देखकर कि उन्हें भारत छोड़ना ही होगा, उसके विभाजन पर ही सभी कुछ दाव पर लगा दिया । अप्रैल में माउन्टबेटन भारत पहुँचे और 3 जून को 'माउन्टबेटन योजना' की घोषणा की गयी । इसमें भारत के दो डोमिनियनों (औपनिवेशक राज्यों) में विभाजन की व्यवस्था थी । संक्षेप में, उसे इस तरह रखा जा सकता है–

1. उपमहाद्वीप में दो डोमिनियन भारतीय संघ और पाकिस्तान स्थापित किए जायेंगे ।
2. पंजाब और बंगाल के साम्प्रदायिक आधार पर विभाजन का प्रश्न संबद्ध प्रांतों के हिन्दू या मुस्लिम बहुल भागों के प्रतिनिधियों के पृथक मतों द्वारा तय किया जाएगा ।
3. उत्तर-पश्चिमी सीमान्त प्रांत तथा असम के सिलहट जिले में (जहाँ की आबादी मुस्लिम-बहुल थी) जनमत-संग्रह किया जाएगा ।
4. सिंध का भविष्य प्रांतीय विधान-मण्डल में मतदान द्वारा तय किया जाएगा ।
5. देशी राज्यों के दोनों औपनिवेशिक राज्यों में से किसी एक में शामिल होने का प्रश्न उसके शासकों द्वारा तय किया जाएगा ।
6. संविधान सभा दोनों राज्यों की अलग-अलग संविधान सभाओं में बँट जाएगी, जो दोनों राज्यों की भावी स्थिति निर्धारित करेगी ।

राष्ट्रीय काँग्रेस ने समझ लिया कि चाहे कुछ भी हो जाए, अंग्रेज मुस्लिम लीग के समर्थन से देश के टुकड़े करने पर तुले हुए हैं और इसलिए रक्तपात से बचाने के लिए वह 'माउन्टबेटन योजना' स्वीकार करने के लिए सहमत हो गयी ।

जून, 1947 में अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के अधिवेशन ने ब्रिटिश प्रस्तावों को 61 के मुकाबले 157 मतों से स्वीकार कर लिया । इसके साथ ही मुस्लिम लीग की परिषद् ने सम्पूर्ण बंगाल और पंजाब को पाकिस्तान में शामिल किए जाने की अतिरिक्त मांगें प्रस्तुत कीं ।

पंजाब और बंगाल में मतदान के दौरान 'हिन्दू' जिलों के प्रतिनिधियों ने कांग्रेस के निर्णय का पालन किया और इन प्रान्तों के विभाजन के लिए मत दिया, जबकि 'मुस्लिम' जिलों के प्रतिनिधियों ने बंगाल और पंजाब के विभाजन के खिलाफ मत दिया ।

सिंध में मतदान और सिलहट तथा उत्तर-पश्चिमी सीमान्त प्रान्त में जनमत संग्रह के नतीजों ने प्रदर्शित किया कि उन्हें पाकिस्तान में शामिल किया जाना चाहिए । साथ ही वायसराय ने खुदाई खिदमतगार नेता खान अब्दुल गफ्फार खाँ की स्वतन्त्र पख्तुनिस्तान की स्थापना के लिए जनमत संग्रह की मांग को भी अस्वीकार कर दिया । इस प्रान्त की आबादी के जिस 15 प्रतिशत को मत देने का अधिकार प्राप्त था, उसका भारी बहुमत ऐसे जनमत संग्रह के पक्ष में था ।

अगस्त 1947 में ब्रिटिश संसद ने माउन्टबेटन योजना का इंडीपेंडेंस ऑफ इंडिया ऐक्ट (भारतीय स्वाधीनता अधिनियम) के रूप में अनुमोदन किया जो उसी वर्ष 15 अगस्त को लागू हो गया ।

15 अगस्त को जवाहरलाल नेहरू ने पहली बार दिल्ली के ऐतिहासिक लाल किले पर भारत का राष्ट्रीय झण्डा फहराया । भारत के स्वतन्त्रता सेनानियों की अनेक पीढ़ियों का वीरतापूर्ण संघर्ष अन्ततः सफलीभूत हुआ । राष्ट्रीय क्रांति की इस विजय ने भारत के इतिहास में स्वतन्त्र विकास के एक नए युग का शुभारंभ किया ।

❋❋❋

पाठ–7

भारतीय संविधान की विशेषताएँ–कार्यपालिका,

व्यवस्थापिका एवं न्यायपालिका

संविधान का निर्माण भारतीय इतिहास की एक महत्वूपर्ण घटना है । इसके पहले भारत में कोई संविधान नहीं था । अंग्रेजों के शासनकाल में समय-समय पर पास होने वाले कानून के सहारे शासन होता था । कैबिनेट मिशन की सिफारिश के अनुसार इस देश के लिए संविधान बनाने के लिए एक संविधान सभा का निर्माण किया गया, जिसका अधिवेशन 9 सितम्बर, 1946 ई० को प्रारंभ हुआ । 2 वर्ष 18 दिन परिश्रम करके इस सभा ने एक संविधान तैयार किया जो 26 जनवरी, 1950 ई० से लागू किया गया । 26 जनवरी का भारत के इतिहास में विशिष्ट स्थान है । इसी तिथि को भारत ने राष्ट्रीय काँग्रेस के लाहौर अधिवेशन के एक प्रस्ताव के माध्यम से पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त करने का निश्चय किया था । तब से भारतवासी प्रत्येक 26 जनवरी को स्वतन्त्रता दिवस मनाते आ रहे हैं । इसी तिथि को नए संविधान के अनुसार गणतन्त्र की स्थापना की गयी और अब हम प्रत्येक वर्ष इस तिथि को गणतंत्र दिवस मनाते हैं ।

भारतीय संवधिान की विशेषताएँ

भारतीय संविधान के निर्माण के पहले अनेक देशों में संविधान का निर्माण हो चुका था । भारत ने इससे लाभ उठाया और उनकी अच्छाइयों को अपने संविधान में सम्मिलित कर लिया । फिर भी, इस संविधान की निजी विशेषताएँ हैं, जो इस प्रकार हैं–

1. भारत का संविधान संसार के सभी संविधानों से बड़ा है । सं० रा० अमेरिका के संविधान में केवल 7, कनाडा के संविधान में 147, आस्ट्रेलिया के संविधान में 128, दक्षिण अमेरिका के संविधान में 154 और चीन के संविधान में 106 धाराएँ हैं पर भारत के संविधान में धाराओं की संख्या 395 है ।

2. यह एक लिखित एवं निर्मित संविधान हैं–लिखित संविधान वह है जो एक या अधिक दस्तावेजों में लिखित रूप में प्राय: होता है । इसके विपरीत अलिखित संविधान वह है जो लिखित रूप में नहीं होता। अलिखित और विकसित संविधान वह संविधान कहलाता है जो शनैः-शनैः विकसित होता हुआ आधुनिक रूप प्राप्त करता है । इसका निर्माण प्रथाओं और रीति-रिवाजों के द्वारा होता है, किसी निश्चित अवधि में किसी संस्था द्वारा नहीं । इंगलैंड का संविधान अलिखित और विकसित संविधान है और संयुक्त राज्य का संविधान लिखित और निर्मित संविधान है । भारत का संविधान भी लिखित और निर्मित संविधान है ।

3. यह कठोरता व लचकता का मिश्रण है–भारतीय संविधान में संशोधन करना न तो बहुत कठिन है और न बहुत सुगम । संघात्मक शासन की एक विशेषता है संशोधन नियमों की कठोरता । सं० रा० अमेरिका का संविधान ऐसा ही है । इसके विपरीत इंगलैंड का संविधान अत्यन्त नमनशील है । इसमें साधारण तथा संवैधानिक कानूनों में कोई अन्तर नहीं है । भारत के संविधाान का संशोधन न तो सं० रा० अमेरिका के समान कठिन है और न इंगलैंड के समान सरल । इसने बीच का मार्ग अपनाया है ।

4. यह प्रजातंत्रात्मक गणराज्य की स्थापना करता है । यह संवधिान राज्य की सार्वभौम सत्ता जनता में निहित करता है, किसी वर्ग या व्यक्ति विशेष में नहीं । भारत का शासन जनता के प्रतिनिधियों द्वारा जनता के लाभ के लिए चलाया जायेगा । यह शासन जनता का शासन होगा । इसमें न तो कोई राजा होगा और न कोई पैतृक आधार से राज्य का प्रधान होगा । इसका प्रधान सदा जनता के द्वारा चुना जायेगा ।

5. यह संघात्मक शासन की स्थापना करता है । सं० रा० अमेरिका के समान भारत में संघात्मक शासन स्थापित किया गया है । प्रदेशों की अपनी सरकार है और केन्द्र की अलग । दोनों सरकारों के बीच कार्यों का बँटवारा कर दिया गया है । किन्तु सं० रा० और भारत के संघात्मक शासन में एक महत्त्वपूर्ण अन्तर है। सं० रा० अमेरिका में संघ कायम होने से पहले कई अलग-अलग राज्य थे जो इंगलैंड से आजादी प्राप्त करने के बाद अलग-अलग पूर्ण स्वतन्त्र हो गये । उन्होंने अपनी सुविधा के लिए मिलकर एक संघ बनाया । परन्तु भारत समूचा एक देश था, जिसके प्रान्तों का कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं था । उन्हें केवल शासन की सुविधा के लिए संघ की इकाइयों का रूप प्रदान किया गया । अमेरिका में स्वतन्त्र राज्यों ने मिलकर संघ कायम किया और भारत में एक ही राज्य को संघ के रूप में परिणत कर दिया गया तथा इसके विभिन्न प्रान्त संघात्मक इकाई बना दिए गए ।

6. इसमें केन्द्र को अधिक शक्तिशाली बनाया गया है–भारतीय संविधान ने संघ सरकार को राज्य सरकारों से अधिक शक्तिशाली बनाया है । अमेरिका में अवशिष्ट अधिकार इकाई सरकार के जिम्मे रखा गया है। किन्तु भारत में यह अधिकार संघ सरकार के जिम्मे रखा गया है । भारत में संघ को इतना शक्तिशाली बनाया गया है कि संकट के समय भारत का शासन एकात्मक शासन का रूप ग्रहण कर सकता है ।

7. यह अध्यक्षात्मक और संसदीय शासन पद्धतियों में मेल कायम करता है–भारत में अध्यक्षात्मक और संसदीय पद्धतियों का मिला-जुला रूप कायम किया गया है । एक और, यहाँ सं० रा० अमेरिका के समान राष्ट्रपति का पद कायम किया गया है जो राष्ट्र के प्रधान होंगे । किन्तु उनके अधिकार इंगलैंड के संवैधानिक राजा के समान रखे गए हैं । यहाँ का शासन वस्तुत: इंगलैंड के समान संसद तथा मंत्रिमंडल के हाथों में रखा गया है ।

8. इसमें एकल नागरिकता की व्यवस्था है–सं०रा० अमेरिका में दोहरी नागरिकता है–एक संघ की और दूसरी संघीय इकाई की । भारत में एक ही नागरिकता रखी गयी है । सभी भारतीय संपूर्ण भारत के नागरिक हैं। राज्यों की अलग नागरिकता नहीं है ।

9. मौलिक अधिकारों का विस्तृत उल्लेख–इस संविधान में भारतीय नागरिकों के मूल अधिकारों का उल्लेख विस्तार से किया गया है । यों तो सभी आधुनिक संविधान में नागरिकों के मूल अधिकार पाए जाते हैं

किन्तु भारतीय संविधान की यह विशेषता है कि इसमें उन अधिकारों का विवरण विस्तार से कर दिया गया है । संसद उन अधिकारों का हनन नहीं कर सकती ।

10. इसमें नीति-निर्देशक तत्त्वों का उल्लेख किया गया है–इस संविधान में सरकार के नीति निर्देशक तत्वों का भी उल्लेख किया गया है । ये तत्व देश के प्रशासन के आधारभूत सिद्धान्त हैं । यह सच है कि इनका पालन कराने के लिए न्यायालय की शरण नहीं ली जा सकती परन्तु कोई भी उत्तरदायी सरकार इनकी उपेक्षा करने का सर्वथा साहस नहीं कर सकती । ये तत्व वे आदर्श हैं जिनको प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करना सरकार का कर्त्तव्य है ।

11. इसमें पिछड़ी जातियों की उन्नति तथा उनके हितों की रक्षा की व्यवस्था है–इस देश में कई जातियाँ ऐसी हैं, जो शिक्षा, सम्पत्ति और रोजगार की दृष्टि से बहुत पिछड़ी हैं । बिना विशेष व्यवस्था और सुविधा के इन जातियों के लिए अन्य जातियों के समान उन्नति करना असंभव है । अतः संविधान में इनकी उन्नति तथा इनके हितों की रक्षा के लिए व्यवस्था की गयी है । इन जातियों में शिक्षा के प्रसार तथा आर्थिक विकास के लिए भी संविधान में विशेष व्यवस्था की गयी है । राष्ट्रपति को यह अधिकार दिया गया है कि वे ऐसे पदाधिकारी नियुक्त करें जो इस बात की जाँच करे कि इन जातियों के लिए की गयी व्यवस्थाओं का ठीक प्रकार से उपयोग किया जा रहा है या नहीं ।

12. यह धर्म निरपेक्ष राज्य की स्थापना करता है–इस संविधान में धर्म को राजनीति से अलग रखा गया है । धर्म नागरिकों का निजी और व्यक्तिगत विषय है, जिससे राज्य का कोई प्रयोजन नहीं है । नागरिक अपना इच्छानुसार किसी भी धर्म का पालन कर सकते हैं । राज्य किसी भी धर्म को कोई विशेष सुविधा नहीं प्रदान करेगा और राज्य का न कोई धर्म होगा ।

13. यह स्वतन्त्र न्यायपालिका की स्थापना करता है–प्रजातन्त्र को सफल बनाने के लिए न्यायपालिका का स्वतन्त्र होना आवश्यक है । इसके अभाव में नागरिकों की स्वतन्त्रता की रक्षा नहीं की जा सकती है । भारतीय संविधान ने इसी कारण न्यायपालिका को स्वतन्त्र बनाया है । एक बार नियुक्त हो जाने पर न्यायाधीश पागल होने या भ्रष्टाचार जैसे भयंकर अपराध के सिद्ध हुए बिना अवकाश प्राप्त करने के पहले हटाये नहीं जा सकते ।

संघ सरकार

राष्ट्रपति

संविधान में कहा गया है कि भारत में एक राष्ट्रपति होगा और संघ की कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में निहित होगी तथा यह इसका संवैधानिक प्रयोग स्वयं या अपने अधीनस्थ अधिकारियों के द्वारा करेगा । इस प्रकार राष्ट्रपति भारत का प्रधान होगा ।

भारत के राष्ट्रपति का निर्वाचन अप्रत्यक्ष रूप से निर्वाचन मंडल के द्वारा होता है । इस निर्वाचक मंडल में संसद के निर्वाचित सदस्य तथा राज्यों की विधानसभाओं के निर्वाचित सदस्य होते हैं । निर्वाचन आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के अनुसार तथा मतगणना एकल संक्रमणीय मत पद्धति से होती है । मतदान गुप्त रूप से होता है । मतदान की व्यवस्था इस प्रकार की गयी है, जिससे संसद के सदस्यों के मतों का योग राज्यों की विधानसभाओं के मतदाताओं के योग के बराबर हों ।

राष्ट्रपति के लिए निम्नलिखित योग्यताएँ रखी गयी हैं–

(i) भारत की नागरिकता,

(ii) कम-से-कम 35 वर्ष की उम्र,

(iii) लोकसभा का सदस्य निर्वाचित होने की योग्यता,

(iv) संघ सरकार, राज्य सरकार या किसी स्थानीय या अन्य अधिकारी के अधीन लाभ के पद पर न रहना। राष्ट्रपति के वेतन, भत्ते आदि संसद के द्वारा निश्चित किए जाते हैं । एक बार तय हो जाने पर वे उनके कार्य-काल में घटाए नहीं जा सकते । आजकल राष्ट्रपति को 20,000 रुपये मासिक वेतन तथा नि:शुल्क आवास मिलता है ।

राष्ट्रपति का चुनाव पाँच वर्षों के लिए होता है । परन्तु समय पूरा होने के पहले भी वे पदत्याग कर सकते हैं। वे त्यागपत्र उपराष्ट्रपति को संबोधन कर लिखेंगे जो इसकी सूचना लोकसभा के अध्यक्ष को देंगे ।

राष्ट्रपति अपने पद से हटाए भी जा सकते हैं । इस प्रक्रिया को महाभियोग कहा जाता है । यदि राष्ट्रपति संविधान का उल्लंघन करें, तो संसद का कोई भी सदन राष्ट्रपति के विरुद्ध महाभियोग ला सकता है और यदि वह विधिवत् पारित हो जाय तो उन्हें पदत्याग करना पड़ता है ।

राष्ट्रपति के अधिकार एवं कार्य–भारतीय संविधान में राष्ट्रपति के अधिकारों का विशेष विवरण दिया गया है । उनके अधिकारों को दो भागों में विभाजित किया जाता है–

(अ) साधारण और

(ब) संकटकालीन ।

साधारण अधिकारों को पुन: पाँच भागों में बाँटा जा सकता है–

(i) **कार्यपालिका संबंधी अधिकार**–राष्ट्रपति कार्यपालिका के प्रधान अंग हैं और इस संबंध में सारे अधिकार उनमें निहित हैं । इन अधिकारों का उपयोग राष्ट्रपति स्वयं या अधीनस्थ पदाधिकारियों के द्वारा कर सकते हैं । जिन मामलों में संसद को कानून बनाने का अधिकार है उन सभी मामलों में राष्ट्रपति को शासनाधिकार प्राप्त है । राष्ट्रपति सेना के प्रधान होते हैं । उन्हें युद्ध या सन्धि करने का अधिकार है। राज्यपालों, केन्द्रीय मंत्रियों, सेनाध्यक्षों आदि सभी प्रमुख अधिकारियों की नियुक्ति राष्ट्रपति ही करते हैं ।

(ii) **व्यवस्थापिका संबंधी अधिकार**–राष्ट्रपति का व्यवस्थापिका संबंधी अधिकार भी बहुत व्यापक है । संसद की बैठक बुलाने, लोकसभा को विघटित करने, संसद के दोनों सदनों के संयुक्त अधिवेशन में या किसी सदन के अधिवेशन में भाषण देने या संदेश भेजने का उन्हें अधिकार है । वे राज्यपरिषद् के बारह सदस्यों का मनोनयन करते हैं । यदि लोकसभा में ऐंग्लो इंडियन समाज का प्रतिनिधित्व नहीं हो पाता है, तो वे इस समाज के प्रतिनिधि मनोनीत करते हैं । वे अण्डमान-निकोबार, लक्ष, मिनिकाय आदि भारतीय द्वीप समूहों के प्रतिनिधि भी मनोनीत करते हैं । कोई विधेयक या बिल तभी कानून का रूप ले सकता है जब दोनों सदनों द्वारा पारित होकर वह राष्ट्रपति की स्वीकृति प्राप्त कर ले । राष्ट्रपति विधेयक को अपने सुझावों सहित पुनर्विचार के लिए संसद में वापस भेज सकते हैं या अस्वीकार कर सकते हैं । किन्तु यदि वह विधेयक फिर संसद द्वारा पारित हो जाए तो राष्ट्रपति स्वीकृति देने से अस्वीकार नहीं कर सकते हैं । कोई भी अर्थ विधेयक राष्ट्रपति की अनुमति से ही संसद में उपस्थित किया जा सकता है । ऐसे विधेयक जब संसद में पारित हो जाते हैं तो राष्ट्रपति इसे अस्वीकार नहीं कर सकते । जिस समय संसद की बैठक नहीं होती रहती है, राष्ट्रपति आवश्यकता पड़ने पर अध्यादेश जारी कर सकते हैं । ऐसे अध्यादेशों का वही महत्व होता है जो किसी संसदीय कानून का, लेकिन सिर्फ छ: महीने के लिए । राष्ट्रपति छ: महीने के लिए इसकी अवधि बढ़ा सकते हैं । प्रत्येक अध्यादेश संसद की बैठक आरम्भ होने पर उसके सम्मुख उपस्थित किया जाता है और यदि यह संसद द्वारा अस्वीकृत नहीं हो जाय, वे बैठक शुरू होने के छ: सप्ताह बाद रद्द हो जाता है ।

(iii) **अर्थ संबंधी अधिकार**–प्रत्येक वित्तीय वर्ष के आरम्भ में राष्ट्रपति को संसद के समक्ष साल भर के आय-व्यय का अनुमानित विवरण पेश करना पड़ता है । राष्ट्रपति की ही सिफारिश पर अनुदानों की माँग की जा सकती है । पूरक माँग के लिए उनकी अनुमति आवश्यक है । राष्ट्रपति आयकर से प्राप्त कर को संघ तथा राज्य सरकारों के बीच वितरित करते हैं तथा वित्त आयोग की नियुक्ति करते हैं ।

(iv) **न्याय संबंधी अधिकार**–राष्ट्रपति को न्याय संबंधी अधिकार भी प्राप्त है । यदि किसी व्यक्ति को मृत्युदण्ड मिला हो, किसी सैनिक न्यायालय द्वारा दण्ड मिला हो या किसी ऐसे कानून के उल्लंघन पर दण्ड मिला हो जो संघ के अधीनस्थ विषयों से सम्बन्धित हो तो राष्ट्रपति उस दण्ड को माफ, कम या स्थगित कर सकते हैं ।

(v) **राष्ट्रपति के विशेषाधिकार**–राष्ट्रपति के किसी कार्य के विरुद्ध न्यायालय में न मुकदमा चलाया जा सकता है और न वे गिरफ्तार ही किए जा सकते हैं । उनके विरुद्ध दीवानी मुकदमा चलाने के लिए दो मास पूर्व लिखित सूचना देनी आवश्यक है ।

(अ) राष्ट्रपति के संकटकालीन अधिकार–

देश में सदा साधारण स्थिति ही नहीं रहती है । यदा-कदा संकट काल उपस्थित हो जाता है । ऐसी अवस्था में संकट का सामना करने के लिए राष्ट्रपति को कई विशेषाधिकार दिये गये हैं । संविधान में तीन प्रकार के संकट की कल्पना की गयी है । युद्ध अथवा आन्तरिक उपद्रव से उत्पन्न संकट, राज्य में संवैधानिक यंत्र की विफलता से उत्पन्न संकट और आर्थिक संकट । प्रथम प्रकार का संकट उपस्थित होने पर राष्ट्रपति घोषणा द्वारा देश की संघात्मक शासन पद्धति को एकात्मक शासन पद्धति में बदल सकते हैं । तब देश भर के शासन-तंत्र की डोर भारत के केन्द्रीय सरकार के हाथ में आ जायेगी । दूसरे प्रकार के संकट के समय ऐसे राज्य में संविधान के अनुसार शासन स्थगित करके वहाँ का शासन राष्ट्रपति अपने हाथों में ले लेता है । तीसरे प्रकार के संकट के समय राज्य विधानमण्डल द्वारा स्वीकृत सभी अर्थ विधेयकों को अपने विचारार्थ सुरक्षित रखने का आदेश दे सकते हैं । वे राज्य को निर्धारित नियमों का पालन करने तथा सरकारी कर्मचारियों के वेतन, भत्ता आदि कम करने का भी आदेश दे सकते हैं ।

उपराष्ट्रपति

संविधान में एक उपराष्ट्रपति का भी विधान है । उपराष्ट्रपति का चुनाव संसद के दोनों सदन मिलकर आनुपातिक प्रतिनिधित्व के आधार पर एकल संक्रमणीय पद्धति से करते हैं । मतदान गुप्त रीति से किया जाता है । उस पद के लिए निम्नलिखित योग्यताओं का होना आवश्यक है–

(i) वह भारत का नागरिक हो,

(ii) वह कम-से-कम पैंतीस वर्ष का हो,

(iii) वह संघ सरकार, राज्य सरकार या स्थानीय सरकार के अधीन किसी लाभ के पद पर न हो ।

उपराष्ट्रपति का चुनाव पाँच वर्षों के लिए होता है । वे इसके पहले भी पद-त्याग कर सकते हैं या महाभियोग द्वारा हटाये जा सकते हैं । वे राज्य सभा का अध्यक्ष पद संभालते हैं । राष्ट्रपति की मृत्यु, पदत्याग, पदच्युति या अन्य किसी कारण से राष्ट्रपति का स्थान रिक्त होने पर वे तब तक राष्ट्रपति का कार्य भार सँभालेंगे,जब तक नये राष्ट्रपति की नियुक्ति नहीं हो जाय । राष्ट्रपति की अनुपस्थिति में उनका कार्यभार उपराष्ट्रपति संभालते हैं ।

मन्त्रिमण्डल

राष्ट्रपति के परामर्श और सहायता के लिए मन्त्रिमण्डल होता है । चूँकि भारत में संसदीय शासन व्यवस्था कायम है, देश के शासन का वास्तविक भार मन्त्रिमण्डल पर रहता है । राष्ट्रपति को जितने सारे अधिकार दिये गये हैं, उनका उपयोग वे मन्त्रिमण्डल के परामर्शानुसार ही करते हैं या यों कहें कि अधिकार वास्तव में मन्त्रिमण्डल के हैं और राष्ट्रपति

का कार्य मन्त्रिमण्डल को मात्र परामर्श तथा चेतावनी देना रहता है । मन्त्रिमण्डल का प्रमुख प्रधानमन्त्री कहलाता है । राष्ट्रपति प्रधानमन्त्री की इच्छा और परामर्श से अन्य मन्त्रियों की नियुक्ति करते हैं । प्रधानमन्त्री की नियुक्ति में भी राष्ट्रपति स्वतन्त्र नहीं है । उन्हें बहुमत वाले दल के नेता को प्रधानमन्त्री नियुक्त करना पड़ता है । मन्त्रियों के बीच प्रशासकीय विभागों का वितरण भी राष्ट्रपति प्रधानमन्त्री के परामर्श से ही करते हैं, मन्त्री राष्ट्रपति के प्रसाद पर्यन्त अपने पद पर रहते हैं । मंत्रियों के लिए संसद का सदस्य होना अनिवार्य नहीं है, पर छः महीने के अन्दर उसे सदस्य बन जाना पड़ता है । अन्यथा उसे पद से हटना पड़ता है । मन्त्रिमण्डल सामूहिक रूप से लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होता है । यदि किसी एक मन्त्री के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पास हो जाता है तो सम्पूर्ण मन्त्रिमण्डल को त्यागपत्र देना पड़ता है । पदग्रहण के समय प्रत्येक सदस्य को राष्ट्रपति के समक्ष दो शपथ लेनी पड़ती है–एक, अपने पद की और दूसरी, गोपनीयता की । मन्त्रियों को संसद के द्वारा निर्धारित वेतन तथा भत्ते मिलते हैं । हमारे देश के प्रथम प्रधानमन्त्री पंडित जवाहर लाल नेहरू थे । उनके देहावसान के बाद कुछ काल तक श्री गुलजारीलाल नन्दा रहे । इसके बाद काँगेस की संसदीय पार्टी के सर्वसम्मति से चुने हुए नये नेता श्री लाल बहादुर शास्त्री नये प्रधानमन्त्री हुए ।

शासन की नीति मन्त्री परिषद अपनी बैठकों में निर्धारित करती है । साधारणतः मंत्रिमंडल की बैठक सप्ताह में एक बार अवश्य होती है । आवश्यकता पड़ने पर विशेष बैठक भी हो सकती है । इस बैठक का सभापतित्व प्रधानमन्त्री करते हैं. मन्त्रिपरिषद में कई समितियाँ होती हैं ।

मन्त्रि-परिषद के निम्नलिखित मुख्य कार्य हैं–

(i) देश की आंतरिक तथा वैदेशिक नीति निर्धारित करना तथा उसे संसद द्वारा स्वीकार कराना ।

(ii) आवश्यक विधेयक तैयार करना तथा संसद से स्वीकृत कराना ।

(iii) अनुमानित सालाना आय-व्यय का विवरण तैयार करना तथा संसद से स्वीकृत कराना । आवश्यकता पड़ने पर अनुपूरक विवरण तैयार करना ।

(iv) संसद की कार्यवाही निश्चित करना ।

(v) संसद में पूछे गये प्रश्नों का उत्तर देना ।

(vi) महत्वपूर्ण नियुक्तियों में राष्ट्रपति को परामर्श देना ।

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि मन्त्रिमण्डल सबसे महत्वपूर्ण शक्तिशाली संस्था है । देश का शासन वास्तव में उसी के हाथों में रहता है । मन्त्रिमण्डल में स्वभावतः प्रधानमन्त्री की विशेष महत्ता रहती है । वह मन्त्रिमण्डल का नेता होता है जिसके परामर्श से अन्य मन्त्रियों की नियुक्ति तथा पदच्युति होती है । मन्त्रियों के बीच कार्य-वितरण भी वास्तव में वही करता है । वह मन्त्रियों के आपसी झगड़ों का निबटारा करता है । जो मन्त्री प्रधानमन्त्री के विचारों से सहमत नहीं होता उसे पद त्याग करना पड़ता है ।

संघ व्यवस्थापिका

संविधान के अनुसार भारत में एक संसद की व्यवस्था की गयी है, जिसका निर्माण राष्ट्रपति और दोनों सदनों से मिलकर होता है । ये दो सदन हैं–राज्यसभा और लोकसभा । राष्ट्रपति किसी भी सदन का सदस्य नहीं होता, फिर भी वे संसद के अभिन्न अंग हैं ।

राज्यसभा–राज्यसभा भारतीय संसद का उच्च या द्वितीय सदन है । इसमें संघ की इकाइयों का प्रतिनिधित्व होता है । इसमें अधिक-से-अधिक 280 सदस्य हो सकते हैं जिसमें से 258 का चुनाव आनुपातिक प्रतिनधित्व पद्धति से एकल संक्रमणीय प्रणाली द्वारा होता है । मतदान गुप्त रीति से होता है । राज्यों की विधान सभाओं के सदस्य उसके मतदाता हैं । 12 सदस्यों को राष्ट्रपति मनोनीत करते हैं । ये सदस्य साहित्य, कला, समाज विज्ञान के विशेष ज्ञाता और अनुभवशील व्यक्ति होतें हैं ।

राज्यसभा एक स्थायी सदन है, जिसका न तो कभी विघटन होता है और न नये सिरे से निर्वाचन । प्रत्येक दो वर्षों के पश्चात् इसके एक-तिहाई सदस्य पदत्याग कर देते हैं और उनके स्थान पर नये सदस्यों का चुनाव होता है । राज्यसभा का सदस्य होने के लिए निम्न योग्यताओं का होना आवश्यक है–

(i) वह भारत का नागरिक हो,

(ii) वह कम-से-कम 30 वर्ष का हो,

(iii) देश के किसी संसदीय क्षेत्र का निर्वाचक हो और

(iv) पागल, दिवालिया तथा सरकारी नौकरी करने वाला नहीं हो ।

उपराष्ट्रपति राज्यसभा के पदेन सभापति होते हैं । इसके अतिरिक्त राज्यसभा अपने सदस्यों में से एक सभापति चुन लेती है जो सभापति की अनुपस्थिति में सभा का कार्य संचालन करता है । साधारणत: सभापति को मतदान का अधिकार नहीं रहता । दोनों पक्षों के मत समान होने पर वह निर्णायक मत दे सकता है ।

लोकसभा–लोकसभा संसद का निचला और प्रथम सदन है । इसमें सदस्यों की अधिकाधिक संख्या 545 हो सकती है, जिनका चुनाव वयस्क मताधिकार के आधार पर होता है । यदि एंग्लो इण्डियन समाज का प्रतिनिधित्व नहीं हो पाता है तो राष्ट्रपति इस समाज के दो प्रतिनिधियों को मनोनीत कर सकते हैं । शेष सदस्यों का चुनाव प्रत्यक्ष पद्धति से होता है । लोकसभा के सदस्यों का चुनाव पाँच वर्षों के लिए होता है ।

लोकसभा अपने सदस्यो में से एक अध्यक्ष तथा एक उपाध्यक्ष का चुनाव करती है जिन्हें वह बहुमत से हटा भी सकती है ।

लोकसभा का सदस्य निर्वाचित होने के लिए निम्नलिखित योग्यताएँ आवश्यक हैं–

(i) वह भारत का नागरिक हो,

(ii) उसकी उम्र कम-से-कम 25 वर्ष की हो, और

(iii) वह उन योग्यताओं को रखता हो जो संसद कानून के द्वारा निश्चित करे । लोकसभा के सदस्यों के चुनाव में वे लोग मतदान कर सकते हैं जो–

(a) भारत के नागरिक हैं,

(b) जिनकी उम्र कम-से-कम 18 वर्ष हो और

(c) वे कम-से-कम 180 दिनों से अपने निर्वाचन क्षेत्रों में रह रहे हों ।

संसद के अधिकार एवं कार्य

1. **कानून बनाने का अधिकार**–संसद का निर्माण खासकर कानून बनाने के लिए होता है । संघ सूची तथा समवर्ती सूची में दिये गये किसी विषय पर संसद कानून बना सकती है । संकट काल में वह राज्य-सूची के विषयों पर भी कानून बना सकती है । यदि दो या दो से अधिक राज्य संसद से राज्य-सूची के किसी विषय पर कानून बनाने का अनुरोध करे तो संसद उस विषय पर कानून बना सकती है । यदि राज्यसभा दो-तिहाई बहुमत से राज्य सूची के किसी विषय को राष्ट्रीय महत्व का घोषित करे तो उस विषय पर भी संसद को कानून बनाने का अधिकार हो जाता है । केन्द्र द्वारा शासित क्षेत्रों के लिए सभी विषयों पर संसद कानून बना सकती है । धन विधेयक के संबंध में लोकसभा को राज्यसभा से अधिक अधिकार प्राप्त है । ऐसे विधेयक लोकसभा में पेश किये जाते हैं । वहाँ से पारित होने पर धन विधेयक राज्य सभा में आता है तो उसे वहाँ 14 दिनों से अधिक रोका नहीं जा सकता ।

2. **वित्त संबंधी अधिकार**–राष्ट्रीय वित्त पर संसद का नियन्त्रण रहता है । सभी कर प्रस्ताव तथा अनुदान

की माँग संसद की स्वीकृति मिलने पर ही लागू हो सकती है । किन्तु भारत की संचित निधि से होनेवाले व्यय की स्वीकृति संसद से नहीं ली जा सकती ।

3. **कार्यपालिका संबंधी अधिकार**–कार्यपालिका पर नियंत्रण रखना संसद का एक प्रमुख कार्य है । जैसा बेगहॉट ने कहा है कि "व्यवस्थापिका का निर्माण नाममात्र के लिए कानून निर्माण के लिए होता है, उसका प्रमुख कार्य कार्यपालिका का निर्माण तथा नियंत्रण करना है ।" कार्यपालिका का निर्माण संसद करती है और कार्यपालिका उसके प्रति उत्तरदायी होती है । अविश्वास का प्रस्ताव पारित कर संसद मन्त्रिमण्डल को अपदस्थ भी कर सकती है । इसके अतिरिक्त संसद के पास और भी कई अस्त्र हैं जिनके द्वारा वह कार्यपालिका पर नियंत्रण रखती है । ये अस्त्र हैं–प्रश्न, कार्य स्थगन प्रस्ताव, कटौती का प्रस्ताव, आलोचना और वाद-विवाद ।

4. **न्यायिक अधिकार**–भारतीय संसद को न्यायिक अधिकार प्राप्त है । जब वह राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति पर महाभियोग का विचार करती है, तो वह न्यायालय का कार्य करती है । विशेष परिस्थितियों में वह राष्ट्रपति से सर्वोच्च तथा उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को पदच्युत करने की सिफारिश भी कर सकती है ।

5. **संविधान के संशोधन के अधिकार**–संसद को भारतीय संविधानमें संशोधन करने का अधिकार है । जो विषय राज्य के अधीन नहीं है, उनके संबंध में संशोधन संसद के दोनों सदनों के दो-तिहाई बहुमत से किया जा सकता है । किन्तु जिस विषय का संबंध राज्य से है, उसका संशोधन कराने के लिए राज्य की विधानसभाओं की स्वीकृति अनिवार्य है ।

संघीय न्यायपालिका–सर्वोच्च न्यायालय

संविधान में भारत के लिए सर्वोच्च न्यायालय की व्यवस्था की गई है, जो संघ शासन व्यवस्था का एक प्रमुख अंग है । यह दिल्ली में स्थित है । इसमें एक मुख्य न्यायाधीश तथा 10 न्यायाधीश होते हैं । संसद कानून द्वारा उनकी संख्या कम या अधिक कर सकती है । न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति करते हैं । न्यायाधीश वही हो सकता है, जो कम-से-कम पाँच वर्षों तक किसी उच्च न्यायालय में न्यायाधीश रह चुका हो या कम-से-कम 10 वर्षों तक किसी उच्च न्यायालय में वकालत कर चुका हो या राष्ट्रपति की नजर में कानून का विशेषज्ञ हो । कार्यभार ग्रहण करने के पूर्व न्यायाधीश को राष्ट्रपति या उनके द्वारा नियुक्त किसी व्यक्ति के सामने संविधान के प्रति निष्ठा तथा निष्पक्ष रूप से निर्णय करने की शपथ लेनी पड़ती है । एक बार नियुक्ति होने पर न्यायाधीश 65 वर्ष की आयु तक अपने पद पर बने रहते हैं । असमर्थता या भ्रष्टाचार के अपराध में राष्ट्रपति उन्हें हटा भी सकते हैं । किन्तु उसके लिए यह आवश्यक है कि संसद के दोनों सदन दो-तिहाई बहुमत से ऐसा करने की सिफारिश करें । मुख्य न्यायाधीश की प्रतिमाह 10,000 रु० और अन्य न्यायाधीशों को 9000 रु० तथा अन्य भत्ते मिलते हैं ।

सर्वोच्च न्यायालय के कार्य–सर्वोच्च न्यायालय के कार्यों को हम चार भागों में बाँट सकते हैं–

(i) प्रारम्भिक कार्य

(ii) अपील संबंधी कार्य,

(iii) परामर्श देने का कार्य और

(iv) मूल अधिकारों की रक्षा ।

प्रारम्भिक कार्य–सर्वोच्च न्यायालय संघ सरकार तथा एक या अधिक राज्य सरकार तथा राज्य सरकारों के बीच अधिकार संबंधी झगड़ों का निर्णय करता है ।

अपील संबंधी कार्य–उच्च न्यायालयों के निर्णय के विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय में अपील की जा सकती है । सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय अन्तिम होते हैं किन्तु स्वयं सर्वोच्च न्यायालय अपने निर्णयों तथा आदेशों की पुनर्विवेचना

कर सकता है । सैनिक न्यायालयों को छोड़कर अन्य किसी भी न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध अपील सुनने का उसे अधिकार है । उसमें निम्न प्रकार की अपीलें हो सकती हैं–

(i) यदि किसी राज्य का उच्च न्यायालय यह प्रमाण पत्र दे कि किसी विवाद विशेष में संविधान की व्याख्या से संबंधित प्रश्न निहित है, तो उसकी अपील सर्वोच्च न्यायालय में हो सकती है ।यदि उच्च न्यायालय ऐसा प्रमाण पत्र नहीं दे, तो स्वयं सर्वोच्च न्यायालय ऐसा प्रमाण पत्र दे सकता है ।

(ii) दीवानी मामलों में कोई अपील उच्च न्यायालय में तभी हो सकती है जब विवाद से संबन्धित सम्पत्ति का मूल्य कम-से-कम 20,000 रुपये हो ।

(iii) फौजदारी मामलों में उच्च न्यायालय से सर्वोच्च न्यायालय में तभी अपील हो सकती है जब निचले न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध उच्च न्यायालय ने किसी अभियुक्त को प्राण-दण्ड दिया हो या किसी निचले न्यायालय से मुकदमा अपने पास मंगाकर उसे मृत्युदण्ड दिया हो । इसके अतिरिक्त यदि उच्च न्यायालय किसी मामले को सर्वोच्च न्यायालय में अपील योग्य घोषित कर दे, तब भी अपील हो सकती है ।

परामर्श देने का कार्य–यदि राष्ट्रपति किसी कानून या तथ्य के साथ संबंध रखने वाले किसी सार्वजनिक महत्व के मुद्दे पर परामर्श माँगे तो सर्वोच्च न्यायालय परामर्श दे सकता है ।

मूल अधिकारों की रक्षा–सर्वोच्च न्यायालय का प्रमुख कार्य नागरिकों के मूल अधिकारों की रक्षा करना है । यदि सरकार संविधान में दिये गये अधिकारों का हनन करे तो नागरिक सर्वोच्च न्यायालय की शरण ले सकता है ।

❋❋❋

पाठ—7a

स्वतन्त्रता की प्राप्ति और विभाजन

1942 ई० के विद्रोह दमन के बाद 1945 ई० में द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति तक भारत में आजाद हिन्द फौज के 'जय हिन्द' नारे को छोड़कर कोई विशेष राजनीतिक गतिविधि नहीं हुई, परन्तु युद्ध की समाप्ति के साथ ही भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन की गतिविधि पुन: तेजी से आरम्भ हुई । ब्रिटिश सरकार, काँग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच ताजा बातचीत आरम्भ की गई जिसने भारतीयों के अन्तिम उद्देश्य स्वतन्त्रता के लिए मार्ग प्रशस्त किया, यद्यपि भारत ने स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली, किन्तु देश के कई भागों में बड़े पैमाने पर साम्प्रदायिक दंगे फूट पड़े एवं देश का कष्टदायक विभाजन हुआ ।

(क) आजाद हिन्द फौज :

आजाद हिन्द फौज की उत्पत्ति के बहुत पहले 1806 ई० में बैल्लोर और 1857 ई० के विद्रोह से जोड़ा जाता है । इसके संगठन को 1915 ई० में सिंगापुर में हुए गदर पार्टी के विद्रोह से प्रेरणा मिली । आजाद हिन्द फौज के संगठन का विचार सबसे पहले मलाया में British Indian Army के एक अधिकारी मोहन सिंह के दिल में आया, जिसे जापानियों ने ब्रिटिश विरोधी संगठन बनाने के लिए प्रोत्साहन दिया और भारतीय युद्धबंदियों को उनके हवाले कर दिया । मोहन सिंह ने उन्हें इण्डियन नेशनल आर्मी में भर्ती किया, परन्तु दिसम्बर 1942 ई० में इस प्रश्न पर कि आजाद हिन्द फौज क्या भूमिका अदा करे, भारतीय सेना और जापानियों में गंभीर मतभेद पैदा हो गये । मोहन सिंह को पदच्युत होना पड़ा । उसे कारावास में डाल दिया गया और इण्डियन नेशनल आर्मी इस बीच दुविधा की स्थिति में रही । परन्तु शीघ्र ही आजाद हिन्द फौज को नई अभिव्यक्ति मिली, जब सुभाषचन्द्र बोस जुलाई 1943 ई० में इसमें शामिल हुए ।

सुभाषचन्द्र बोस सोवियत यूनियन से सहायता प्राप्त करने के उद्देश्य से छिपकर भाग निकले थे, किन्तु जून 1941 ई० में सोवियत संघ मित्र राष्ट्रों के साथ मिल गया तो वे जर्मनी चले गये और वहाँ उन्होंने हिटलर से भेंट की और भारत को स्वतन्त्र कराने के लिए उनसे सहायता माँगी । उसके बाद ब्रिटिश शासन के विरुद्ध एक सशस्त्र संघर्ष शुरू करने के उद्देश्य से फरवरी 1943 ई० में जापान रवाना हुए और जुलाई 1943 ई० में जापान अधिकृत सिंगापुर पहुँच गये जहाँ से उन्होंने 'दिल्ली चलो' का अपना प्रसिद्ध नारा दिया और भारत को स्वतन्त्र कराने के उद्देश्य से 21 अक्टूबर 1944 ई० को आजाद हिन्द फौज की स्थापना की घोषणा की । सुभाष चन्द्र बोस को जिन्हें अब सैनिक 'नेता जी' के नाम से पुकारते थे, पुराने आतंकवादी क्रांतिकारी रास बिहारी बोस एवं जनरल मोहन सिंह की सहायता मिली । उन्होंने अपने अनुयायियों को 'जय हिन्द' का नारा दिया । आजाद हिन्द फौज ने वर्मा से भारत की ओर अभियान में जापानी सेना का साथ दिया । अपनी मातृभूमि को स्वतन्त्र कराने के लक्ष्य से अनुप्राणित होकर आजाद हिन्द फौज के सैनिकों और अधिकारियों ने मुक्ति कर्त्ता के रूप में सुभाष चन्द्र बोस के नेतृत्व में बनी अस्थायी आजाद हिन्द सरकार के साथ भारत में प्रवेश करने की आशा की । गाँधी जी से समस्त मतभेदों के बावजूद नेता जी अपना अभियान आरम्भ करने से पहले राष्ट्रपिता का आशीर्वाद माँगना नहीं भूले । जापानी शिविरों में भारतीय युद्धबन्दी आजादी हिन्द फौज की सेना में भर्ती के लिए अच्छे पात्र सिद्ध हुए और 60,000 में से 20,000 युद्ध बन्दी इस सेना में भर्ती हो गए । दक्षिण पूर्व एशिया में बसे हुए भारतीय व्यापारी समुदाय ने वित्तीय सहायता और स्वयंसेवक प्रदान किये । आजाद हिन्द फौज स्पष्ट रूप से असाम्प्रदायिक थी । इसके अधिकारियों और जवानों में मुसलमान काफी महत्वपूर्ण थे । उसने झाँसी की रानी के नाम पर एक Woman's Regiment की भी स्थापना की थी । मार्च और जून 1944 ई० के दौरान आजाद हिन्द फौज जापानी सेनाओं के साथ भारतीय भूमि पर इम्फाल की घेराबन्दी के अभियान में सक्रिय रही जिसका अन्त पूर्ण असफलता में हुआ ।

1944-1945 के बीच युद्ध में जापानियों की पराजय ने आजाद हिन्द फौज की सेनाओं को दोबारा युद्ध बन्दी बना दिया । टोकियो जाते हुए एक विमान दुर्घटना में नेता जी की मृत्यु हो गई, जिसे अब भी कुछ लोग मनगढ़ंत घटना समझते हैं । यद्यपि उस समय अधिकतर भारतीय राष्ट्रवादियों ने फासिस्ट शक्तियों के सहयोग से स्वतन्त्रता प्राप्त करने की नेता जी की रणनीति की आलोचना की फिर भी यह निर्विवाद तथ्य है कि आजाद हिन्द फौज का संगठन करके उन्होंने भारतीय जनता और फौज के समाने राष्ट्रभक्ति का एक प्रेरणादायक उदारहण पेश किया ।

दक्षिण-पूर्व एशिया में अंग्रेजों के समक्ष अन्तिम आत्म-समर्पण के पश्चात् जब आजाद हिन्द फौज की सेना वापस भारत लाई गई और उन्हें कठोर दण्ड देने की धमकी दी गई तो उनके बचाव के लिए एक शक्तिशाली आंदोलन उठ खड़ा हुआ । सरकार ने 20000 सैनिकों में से कई सौ सैनिकों पर खुलेआम मुकदमा चलाने का निर्णय लिया । नवम्बर 1945 ई० में दिल्ली के लाल किले के पहले मुकदमे की पेशी में आजाद हिन्द फौज के अधिकारियों में सभी पहले ब्रिटिश इण्डियन आर्मी के अधिकारी रह चुके थे । उन पर अभियोग लगाया गया कि उन्होंने ब्रिटिश राज के प्रति वफादारी की जो शपथ ली थी उसे तोड़ दिया और इस प्रकार विश्वासघाती बन गये । दूसरी ओर जनता ने राष्ट्र के वीरों के रूप में उनका स्वागत किया । भूला भाई देसाई, तेज बहादूर सप्रू, आसफ अली और जवाहर लाल नेहरू ने उनके बचाव वकील के रूप में उनके मुकदमें की पैरवी की । सारा देश अब उत्तेजना तथा इस विश्वास से भर गया कि इस बार संघर्ष में विजय होगी । वे इन वीरों को दण्ड दिये जाने से रोकने के लिए कटिबद्ध थे । इस प्रश्न पर सभी भारतीय एक साथ थे । मुस्लिम लीग ने भी देशव्यापी विरोध में साथ दिया । विरोध करने वालों में हिन्दू मुसलमान होने के भेद का थोड़ा सा भी एहसास नहीं था ।

इस बार ब्रिटिश सरकार भारतीय जनमत की अवहेलना करने की स्थिति में नही थी । फौजी अदालत द्वारा आजाद हिन्द फौज के बन्दियों को अपराधी करार दिये जाने के बावजूद सरकार ने उन्हें रिहा कर देना ही समुचित समझा । पंजाब के गवर्नर ने सूचना दी थी कि आजाद हिन्द फौज के रिहा किये गये बन्दियों के लिए लाहौर में होने वाले स्वागत समारोह में भारतीय सैनिक वर्दी पहन कर शामिल हुए थे ।

(ख) रॉयल इण्डियन नेवी का विद्रोह (1946)–

आजाद हिन्द फौज ने दिखला दिया था कि भारत में ब्रिटिश शासन के मुख्य साधन प्रोफेसनल भारतीय सेना के अन्दर देश-भाक्ति की भावना घुस गई है । उसी समय फरवरी 1946 ई० में भारतीय नौ सेना के नाविकों का बम्बई में प्रसिद्ध विद्रोह हुआ । रॉयल इण्डियन नेवी (संक्षेप में आर आई एन) का विरोध 28 फरवरी को आरम्भ हुआ जब एच० एम० आई० एस० 'तलवार' के नाविकों ने घटिया खाने और जातीय अपमान आदि के विरोध में भूख-हड़ताल कर दी। अगले दिन सभी 20 जहाजों के नाविक हड़ताल में शमिल हो गये । नाविकों ने एक नौ सेना सेन्ट्रल स्ट्रांग कमिटी का चुनाव किया ।

नाविकों ने नौ सेना केन्द्रीय हड़ताल समिति का चुनाव किया जिसके प्रमुख एम० एस० खान थे । उसकी माँगों में बेहतर खाने तथा गोरे और भारतीय नाविकों के लिए समान वेतन आदि माँगों के साथ ही आजाद हिन्द फौज एवं अन्य राजनैतिक वंदियों की रिहाई और इण्डोनेशिया से भारतीय सैनिकों को वापस बुलाये जाने की माँग शामिल थी । अगले दिन हड़तालियों ने बम्बई में एक जुलूस निकाला । यह जुलूस एक साथ कांग्रेस, मुस्लिम लीग और कम्युनिष्ट पार्टी के झण्डे तले निकला ।

हड़तालियों और ब्रिटिश सेना के बीच गोलियाँ चलीं । नाविकों ने फौज और नौसेना के साथ सात घण्टों तक लड़ाई लड़ी और केवल राष्ट्रीय नेताओं के कहने पर आत्म-समर्पण किया । इस विद्रोह के समाचार सारे देश में बड़ी तेजी से फैले । हड़तालियों के समर्थन में कराँची, कलकत्ता, मद्रास और विशाखापट्टनम में नाविक बाहर निकल आये। ऐसा प्रतीत होता था कि यह विद्रोह पूरी शाही भारतीय नौ-सेना में फैल जाएगा ।

स्थिति दोबारा उस समय उलझ गई जब बम्बई में वायु-सेना के पयलौटों और हवाई अड्डा के कर्मचारियों ने हड़ताल कर दी । स्थिति को विस्फोटक करने के लिए कम्युनिष्ट पार्टी के आह्वान पर आम हड़ताल, जुलूस और आम रैलियाँ हुईं ।

आजाद हिन्द फौज के जवानों के ठीक विपरीत शाही सेना के इन नाविकों को कभी राष्ट्र-नायकों की भाँति सम्मान नहीं मिला । यद्यपि उनके कारनामों में कुछ अर्थों में आजाद हिन्द फौज के सैनिकों से कहीं अधिक खतरा था। जापानियों के युद्ध बन्दी शिविर की कठिनाई भरी जिन्दगी जीने से आजाद हिन्द फौज में भर्त्ती होना कहीं बेहतर था । नौ सेना केन्द्र हड़ताल समिति का यह संदेश याद रखने के योग्य है–

"हमारी हड़ताल हमारे राष्ट्र के जीवन की एक ऐतिहासिक घटना रही है । पहली बार सेना के जवानों और आम जनता का खून सड़कों पर एक साथ एक लक्ष्य के लिए बहा । हम फौजी उसे कभी नहीं भूलेंगे । हम यह जानते हैं कि हमारे भाई-बहन भी इसे नहीं भूलेंगे । हमारी महान जनता जिंदाबाद, जय हिन्द ।"

भारतीय सशस्त्र सेना के इस कार्य से यह स्पष्ट हो गया कि भारत में एक क्रान्तिकारी प्रवृत्ति (trend) उग्र रूप धारण कर रही थी ।

(ग) राजगोपालाचारी फार्मूला (मार्च 1944)–

मुस्लिम लीग ने घोषणा कर दी कि भारतीय मुसलमानों का अन्तिम लक्ष्य पाकिस्तान प्राप्त करना है । उसने मार्च 1943 को पाकिस्तान दिवस मनाया । कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच समझौते की आवश्यकता थी ।

मार्च 1944 में चक्रवर्ती राजगोपालाचारी ने गाँधीजी की सहमति से एक फार्मूला तैयार किया जिसमें कहा गया कि–

(क) लीग की सम्पूर्ण स्वाधीनता की माँग में काँग्रेस को समर्थन करना चाहिए ।

(ख) युद्ध की समाप्ति के पश्चात् मुस्लिम-बहुल राज्यों में जनमत संग्रह हो जो यह निश्चय करे कि पृथक् राज्य का निर्माण किया जाये या नहीं ।

(ग) अगर अलगाव हो जाए तो दोनों राज्यों को प्रतिरक्षा, संचार और अन्य सामान्य मामलों के लिए समझौते कर लेना चाहिए ।

(घ) यह स्कीम तभी लागू होगी जब भारत को सम्पूर्ण स्वाधीनता मिल जाय । इस स्कीम को जिन्ना ने अस्वीकार कर दिया ।

(घ) देसाई लियाकत समझौता–

लीग के द्वारा राजगोपालाचारी फार्मूला रद्द किये जाने के बाद कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच समझौते का एक दूसरा प्रयास केन्द्रीय विधानसभा में कांग्रेस के नेता श्री भूला भाई देसाई ने किया । उन्होंने विधानसभा में मुस्लिम लीग के उपनेता श्री लियाकत अली खान से भेंट की और प्रस्ताव रखा कि केन्द्र में अन्तरिम सरकार का गठन होना चाहिए, जिसमें केन्द्रीय विधानसभा में कांग्रेस और लीग के द्वारा मनोनीत सदस्यों की संख्या बराबर हो । इस स्कीम को भी मुस्लिम लीग ने रद्द कर दिया ।

(ङ) शिमला काँग्रेस और वावेल प्लान (1945)–

महात्मा गाँधी 6 मई 1944 को अस्वस्थता के कारण जेल से रिहा कर दिये गये । उन्होंने श्री जिन्ना के साथ काफी बातचीत की, किन्तु कोई समझौता नहीं हुआ । दूसरी ओर खराब होती हुई आर्थिक स्थिति, सिलहट और पूर्वी सीमा पर युद्ध के डर के फलस्वरूप देश के अन्दर और बाहर रोज-ब-रोज परिस्थिति खराब होती जा रही थी जिसमें भारत को शुभ-चिंतक की आवश्यकता थी । लार्ड लिनलिथगो के स्थान पर अक्टूबर 1943 में लार्ड वावेल गवर्नर-जेनरल होकर आ चुके थे । भारतीय समस्या का कुछ समाधान निकालने के उद्देश्य से मार्च 1945 में वे विमान से लन्दन गये और एक मुख्य प्रस्ताव के साथ लौटे । वह प्रस्ताव यह था कि वाइसराय और प्रधान सेनापति को छोड़कर उसकी कॉउन्सिल के अन्य सदस्य भारतीय होंगे जो भारतीय दलों में से मुसलमान एवं तथाकथित सवर्ण हिन्दुओं के बीच से समता के आधार पर चुने जायेंगे । उसने 25 जून 1945 को शिमला में सभी दलों का सम्मेलन बुलाया और अपना प्रस्ताव रखा जो वावेल योजना के नाम से प्रसिद्ध है । काँग्रेस ने प्रस्तावित अन्तरिम सरकार में मौलाना आजाद को प्रतिनिधियों में से एक प्रतिनिधि मनोनीत किया । श्री जिन्ना ने इस प्रस्ताव को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया क्योंकि उनका दावा था कि मुस्लिम लीग अकेले ही भारतीय मुसलमानों का प्रतिनिधित्व करती है ।

काँगेस भी अपनी नामजदगी पर अड़ी रही । अत: बावेल-योजना असहफल हो गयी ।

(च) केन्द्र और राज्य विधानसभाओं के चुनाव (1946)–

शिमला काँफ्रेंस के कुछ ही दिनों बाद ब्रिटेन में लेवर पार्टी सत्ता में आई । नई ब्रिटिश सरकार ने भारत में राजनैतिक गतिरोध समाप्त करने का जमकर प्रयास किया । उसने निर्णय किया कि केन्द्रीय और प्रांतीय, दोनों भारतीय Assembly के लिए क्या चुनाव कराया जाए । मार्च के प्रस्ताव के अनुसार भारतीय सदस्यों के साथ चुनाव के शीघ्र बाद वाइसराय के Executive कॉउन्सिल का पुन: निर्माण किया जाए तथा यथासम्भव जल्द-से-जल्द संविधान-निर्मात्री संस्था को बुलाया जाए । 1946 ई0 के आरम्भ में सारे भारत में चुनाव हुए । काँग्रेस ने सभी सामान्य स्थानों पर और मुस्लिम लीग ने सभी मुस्लिम स्थानों पर अधिकार जमाया । केवल उत्तर पश्चिमी सीमान्त प्रान्त में काँग्रेस ने मुस्लिम स्थानों पर भी अधिकार किया । काँग्रेस और मुस्लिम लीग ने ऐसे बहुमत प्राप्त राज्यों में अपने-अपने मंत्रिमण्डलों का गठन किया । लार्ड वावेल ने घोषणा की कि शीघ्र ही एक संविधान सभा का गठन किया जाएगा और केन्द्रीय कार्यकारिणी समिति का पुनर्गठन किया जाएगा ।

(छ) कैबिनेट मिशन मार्च-जून (1946)–

ब्रिटिश प्रधानमंत्री श्री एटली ने मार्च 1946 ई० में भारतीय नेताओं के साथ भारतीयों को सत्ता-हस्तांतरण की शर्तों पर बातचीत करने के लिए कैबिनेट मिशन भेजा जिसमें लार्ड पैथिक लारेन्स, सर स्टैफर्ड क्रिप्स और ए० बी० एलक्जेन्डर सम्मिलित थे । मिशन ने भारत के सभी दलों के प्रसिद्ध नेताओं के साथ बातचीत की । दोनों के बीच कोई

समझौता सम्भव नहीं था । मिशन ने 16 मई 1946 को एक वक्तव्य जारी किया जिसमें उसने भारत के भावी शासन के बारे में संक्षेप में अपना विचार प्रकट किया तथा एक विस्तृत संविधान बनाने की कार्य-प्रणाली प्रस्तुत की ।

कैबिनेट मिशन ने दो सीढ़ियों वाली संघीय योजना रखी जिसमें आशा की जाती थी कि वह अधिकतम क्षेत्रीय स्वायत्तता के साथ-साथ राष्ट्रीय एकता भी बनाये रखेगी । प्रांतों और देशी राज्यों का एक संघ बनाने की बात की गयी जिसमें संघीय केन्द्र केवल प्रतिरक्षा, विदेशी मामलों और संचार पर नियंत्रण रखेगा । साथ ही प्रान्त विशेष क्षेत्रीय युनियन बना सकते थे जिनको पारस्परिक सहमति से वे अपने कुछ अधिकार दे सकते थे । काँग्रेस और मुस्लिम लीग, दोनों ने इस योजना को स्वीकार कर लिया । मगर अन्तरिम सरकार संबंधी योजना पर उनके बीच सहमति नहीं हो सकी । अन्तरिम सरकार को स्वतंत्र संघीय भारत का संविधान बनाने के लिए एक संविधान सभा बुलानी थी, जिस कैबिनेट मिशन योजना पर पहले सहमति हो गई थी, दोनों पक्षों ने उसकी भिन्न-भिन्न व्याख्याएँ कीं । अन्ततः 1945 ई० में काँग्रेस ने जवाहर लाल नेहरू के नेतृत्व में एक अन्तरिम मन्त्रिमण्डल बनाया । कुछ हिचकिचाहट के बाद अक्टूबर में मुस्लिम लीग भी मन्त्रिमण्डल में शामिल हो गई ।

आरम्भ में सभी राजनैतिक दलों ने कैबिनेट योजना की आलोचना की, परन्तु बाद में सभी ने उसे स्वीकार कर लिया । उसके बाद साम्प्रदायिक आधार पर संविधान सभा का चुनाव हुआ । काँग्रेस ने 210 स्थान में से 199 स्थानों पर और मुस्लिम लीग ने 78 में से 73 स्थानों पर अधिकार कर लिया । परन्तु लीग ने संविधान सभा के बायकाट का निश्चय किया । कैबिनेट मिशन 29 जून 1946 ई० को भारत से रुखसत हुई ।

परन्तु आ रही आजादी के उल्लास में अगस्त 1946 ई० के दौरान और उसके बाद बड़े पैमाने पर हुए साम्प्रदायिक दंगों ने खलल डाली । मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान प्राप्त करने के लिए 16 अगस्त 1946 ई० को Direct Action Day के रूप में निश्चित किया । इसके फलस्वरूप भारत के विभिन्न भागों में साम्प्रदायिक दंगे भड़क उठे । पंजाब, पूर्वी बंगाल, बिहार और त्रिपुरा इन दंगों के मुख्य केन्द्र थे । नृशंस मार-काट शुरू करने के लिए हिन्दू और मुस्लिम सम्प्रदाय के लोगों ने एक दूसरे को दोषी ठहराया और बेरहमी में एक-दूसरे से आगे बढ़ने के लिए उनके बीच होड़ मच गई । ये दंगे भारतीय जीवन में खलल-आजादी करते रहे । ऐसी ही परिस्थिति में मि० एटली ने 2 फरवरी 1947 को घोषणा की कि ब्रिटिश सरकार हर हाल में जून 1948 ई० से पहले भारत छोड़ देगी । लार्ड माउन्टबैटन को अंग्रेजों से भारतीयों को सत्ता हस्तांतरित करने का प्रबन्ध करने के निमित्त भारत का वाइसराय नियुक्त किया गया ।

(ज) माउन्टबेटन योजना और भारत का विभाजन (अगस्त 1947)–

भारत छोड़ने की ब्रिटिश घोषणा से सम्पूर्ण भारत में हार्दिक उत्साह फैल गया । यद्यपि मुस्लिम लीग को इससे निराशा हो गई । तब उसने फिर एक बार सीधी कार्रवाई का सहारा लिया । सारे पंजाब में दंगे हो गये तथा शीघ्र उत्तर पश्चिमी सीमा प्रान्त में फैल गए । विस्तृत क्षेत्र में बड़े पैमाने पर लूट-खसोट, गृह-दाह, हत्या और हिंसा की घटनाएँ होती रहीं । इन क्रमिक साम्प्रदायिक दंगों का अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण परिणाम हुआ । हिन्दू और सिक्ख अब तक जोरदार रूप से संयुक्त भारत के पक्ष में थे, किन्तु अब धीरे-धीरे वे उसकी अव्यावहारिकता अनुभव करने लगे । उन्होंने मुसलमानों के संविधान सभा में भाग लेने से इन्कार करने पर पंजाब में बँटवारे की माँग की ।

लार्ड माउण्टबेटन ने 24 मार्च 1947 को बाइसराय के रूप में पद ग्रहण किया काँग्रेस और मुस्लिम लीग के नेताओं से लम्बे विचार-विमर्श के बाद उन्होंने समझौते की एक योजना तैयार की । उन्होंनें 3 जून 1947 ई० को अपनी योजना प्रस्तुत की, जिसकी मुख्य बातें संक्षेप में इस प्रकार हैं–

(i) यदि मुस्लिम बहुलता वाले क्षेत्र चाहें तो वे एक पृथक Dominion बना सकते हैं । उस हालत में उस उद्देश्य के लिए एक नई संविधान निर्मात्री assembly बैठेगी । मगर ऐसा होने पर यदि उन प्रान्तों के विधान मण्डलों को हिन्दू बहुलता वाले जिलों के प्रतिनिधि ने चाहा तो बंगाल एवं पंजाब का बँटवारा होगा ।

(ii) उत्तर-पश्चिम सीमा प्रान्त में जनमत संग्रह होगा जिसके द्वारा यह तय किया जायेगा कि उसे पाकिस्तान में शामिल होना है या नहीं ।

(iii) जनमत संग्रह द्वारा लोगों के विचार जानने के बाद सिलहट जिला बंगाल के मुस्लिम क्षेत्र के साथ मिला दिया जाएगा ।

(iv) बंगाल और पंजाब में हिन्दू एवं मुस्लिम प्रान्तों की सीमाएँ निर्धारित करने के लिए सीमा कमीशनों की नियुक्ति होगी ।

(v) पार्लियामेंन्ट के वर्तमान अधिवेशन में तुरंत भारत को Dominion status देने के लिए कानून बनाया जाएगा ।

इस संबंध में संविधान निर्मात्री Assemb;y के अन्तिम निर्णय पर इससे कोई क्षति नहीं पहुँचेगी ।

इस ऐतिहासिक घोषणा का जनता द्वारा मिश्रित भावनाओं के साथ स्वागत हुआ । हिन्दुओं और उदार विचारों के मुस्लिम राष्ट्रवादियों ने भारत की इस चीर-फाड़ पर अफसोस प्रकट किया जबकि लीग के मुसलमान इसे 'सिर कटे और पतंगों द्वारा जर्जरीकृत' पाकिस्तान से पूर्ण संतुष्ट नहीं हुए । मो० अली जिन्ना ने होने वाले पाकिस्तान का एक बार ऐसा ही वर्णन किया था ।

जो भी हो इसे साधारणत: सबने स्वीकार किया कि समय को देखते हुए नवीन योजना भारतीय समस्या का सबसे अच्छा व्यावहारिक समाधान था । तद्नुसार कांग्रेस और लीग, दोनों ने इसे स्वीकार कर लिया । पंजाब और बंगाल का बंटवारा ब्रिटिश सरकार द्वारा नियुक्त दो कमीशनों द्वारा कराया गया । सर सिरील रेडक्लीफ दोनों कमीशनों के अध्यक्ष थे । भारत स्वतन्त्रता बिल को ब्रिटिश पार्लियामेंट ने बिना किसी मतभेद के । जुलाई 1947 ई० को पास कर दिया । इसने 15 अगस्त 1947 ई० को सत्ता हस्तान्तरित करने की तिथि निश्चित की । तदनुसार 14-15 अगस्त को आधी रात को दिल्ली में संविधान निर्मात्री असेम्बली का एक विशेष अधिवेशन किया गया । इसने गम्भीर तौर पर ब्रिटिश मंडल के एक भाग के रूप में भारत की स्वतन्त्रता की घोषणा की तथा लार्ड माउण्टबेटन को नवीन भारत Dominion का प्रथम गवर्नर-जनरल नियुक्त किया । मि० जिन्ना पाकिस्तान के प्रथम गवर्नर-जनरल चुने गए । पाकिस्तान ने अपनी खास Constituent Assembly बुलाने के लिए शीघ्र ही कदम उठाया ।

15 अगस्त 1947 ई० ने इस प्रकार ब्रिटिश शासन के विरुद्ध लम्बे राष्ट्रीय संघर्ष का अन्त देखा और भारतीय इतिहास में यह एक यादगार दिन माना जायगा ।

प्रस्तावित पुस्तकें

1. विपिन चन्द्र – इण्डियाज स्ट्रगल फॉर फ्रीडम
2. विपिन चन्द्र – मॉडर्न इण्डिया
3. सुमत सरकार – मॉडर्न इण्डिया 1885-1947
4. सरकार, राय चौधरी और दत्त – एन एडवान्सड हिस्ट्री ऑफ इण्डिया-भाग III
5. तारा चन्द्र – हिस्ट्री ऑफ फ्रीडम मूवमेंट इन इण्डिया
6. आर० सी० मजुमदार – हिस्ट्री ऑफ फ्रीडम मूवमेंट इन इण्डिया
7. वी० पी० मेनन – ट्रांसफर ऑफ पॉवर

❋❋❋